H10
729
Recd 12-4-88

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

* परिशिष्टाङ्क *

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,७०,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१३, फरवरी १९८८ ई०

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें १.५० रु० विदेशमें २० पेंस

जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वा[illegible]र्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ३८.००रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा ९ डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका

गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो धेनुः कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु॥

वर्ष ६२ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१३, फरवरी १९८८ ई० { संख्या २
पूर्ण संख्या ७३५

भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६४-६६)

'सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचनको तू फिर भी सुन। तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा। हे अर्जुन! तू मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझे प्रणाम कर। ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्योंको मुझमें त्यागकर और निश्चिन्त होकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कल्याण

याद रखो—भगवान्ने तुम्हें जो कुछ भी दिया है, वह लाभ उठानेके लिये है, अतः प्रत्येक वस्तु तथा परिस्थितिका सदुपयोग करके उससे लाभ उठाओ । सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु है—समय । मृत्यु आनेपर एक क्षणका समय भी माँगे नहीं मिलता, अतएव जीवनके एक-एक क्षणका सदुपयोग करो । एक-एक श्वासका समय कल्याणमय कार्यमें लगाओ । समयका सर्वोत्तम सदुपयोग है—आलस्य-प्रमादको छोड़कर भगवान्का मङ्गलमय स्मरण करते हुए प्रत्येक कर्तव्य-कर्मको भगवान्की पूजा-सेवाके भावसे करना । अनर्थकारी और व्यर्थ साहित्य, सिनेमा, ताश आदि खेल, व्यर्थ निद्रा, व्यर्थ वार्तालाप आदिमें समय खोना उसका दुरुपयोग है । पापकर्मोंमें समय लगाना तो दुरुपयोग ही नहीं है, अपितु समयके साथ शत्रुता करके अपने विनाशको बुलाना है ।

तुम्हें मन मिला है—भगवच्चिन्तन करने तथा सच्चिन्तनके द्वारा अपना तथा पराया मङ्गल सोचनेके लिये । ऐसा करना ही मनका सदुपयोग है और जीवनकी सफलताका साधन है, परंतु तुम इसे यदि विषाद, भय, चिन्ता, वैर, हिंसा, व्यर्थ-चिन्तन, काम-चिन्तन, विषय-चिन्तनमें लगाते हो, पवित्र भावोंके बदले अशुद्ध विचारोंमें संलग्न रखते हो, नियन्त्रणमें न रखकर व्यर्थ-अनर्थके विचारोंमें भटकने देते हो तो तुम इसका दुरुपयोग कर रहे हो ।

तुम्हें वाणी मिली है—भगवन्नाम-गुण-गानके लिये, स्वाध्यायके लिये, हितपूर्ण-मधुर-सत्य-भाषणके लिये—ऐसे शब्दोंके उच्चारणके लिये, जिनसे अपना तथा दूसरोंका कल्याण हो तथा जो शब्द वायुमण्डलमें फैलकर चिरकालतक वातावरणमें शुद्ध प्रेरणा देते रहें । ऐसा करना ही वाणीका सदुपयोग है । इसके विपरीत यदि तुम वाणीके द्वारा असत्य, अहितकारी, उद्वेग उत्पन्न करनेवाले कटु तथा अप्रिय शब्दोंका उच्चारण करते हो, परनिन्दा, परचर्चा, परहानिचर्चा, आत्मप्रशंसा, सन्निन्दा या व्यर्थकी बातोंमें, दुनियाकी आलोचना-प्रत्यालोचनामें, मिथ्या गप-शपमें लगाते हो तो वाणीका दुरुपयोग करते हो ।

याद रखो—तुम्हें धन-सम्पत्ति मिली है, वस्तुएँ मिली हैं—भगवान्की सेवाके लिये । जहाँ अभाव है, वहाँ भगवान् उन अभावग्रस्तोंके रूपमें तुमसे धन-सम्पत्ति तथा उन वस्तुओंको माँगते हैं । यदि तुम उन वस्तुओंको अपनी न मानकर, अपने लिये कम-से-कम लेकर शेष सब यथायोग्य अभावग्रस्तोंको आदरपूर्वक प्रदान करनेके रूपमें भगवत्-सेवामें लगा देते हो, तब तो उनका सदुपयोग करते हो और तुम्हारी धन-सम्पत्ति तथा प्राप्त वस्तुओंकी सार्थकता होती है । इससे आत्मप्रसादके साथ तुम्हें भगवत्कृपा प्राप्त होती है, परंतु इसके विपरीत यदि तुम उस धन-सम्पत्तिपर अपना स्वामित्व—अपना अधिकार मानकर उसे अपने ही भोगमें लगाते हो या संग्रह करके ही उसके रक्षणकी चिन्ता करते हुए मर जाते हो तो तुम अपनी बड़ी हानि करते हो; क्योंकि भगवान्की वस्तुको अपनी मानकर तुम चोरी करते हो और इस चोरीका दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा । तुम यदि धन-सम्पत्तिको स्वाद-शौकीनी, विलासिता-फैशन आदिमें, शराब-व्यभिचार, अनाचार-अत्याचार, अभक्ष्य-भक्षण-पान या वैर-हिंसामें लगाते हो तो उसका पूरा दुरुपयोग करते हो—आप ही अपने लिये अनन्त यन्त्रणामय नरक-भोगकी योजना बनाते हो, अतः सावधान हो जाओ । पापके कार्योंमें तो धन-सम्पत्ति या किसी भी प्राप्त वस्तुका उपयोग करो ही मत । अपने जीवन-निर्वाहमें भी अत्यन्त सादगीसे उनका कम-से-कम उपयोग करो । बढ़िया बहुमूल्य कपड़े न पहनकर कम मूल्यके सादे कपड़े पहनो और पैसोंको बचाकर उनसे अभावग्रस्तोंके लिये वस्त्रोंकी व्यवस्था करो । खान-पानमें सादगीसे बरतो और शेष पैसोंको अन्नके अभावसे दुःखी, पीड़ित भगवत्स्वरूपोंकी सेवामें—अन्नदानके रूपमें लगाओ । यही सदुपयोग है ।

इसी प्रकार तुम्हें जो कान-नाक-आँख-जीभ-त्वक् इन्द्रियाँ मिली हैं—इन्हें भी भगवान्के साथ जोड़कर तथा इनके द्वारा सेवा करके इनका सदुपयोग करो । दुःख, निन्दा, अपमान, संकट आनेपर उनका भी सदुपयोग यों विचार कर करो कि ये सब हमारे ही किये दुष्कर्मोंके फल हैं, अतएव अब किसी प्रकार भी कोई दुष्कर्म न करके सदा सत्कर्म ही करना है ।—'**शिव**'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कार और शिक्षा

विद्यासे अमृतकी उपलब्धि और अविद्यासे सब प्रकारके बन्धनकी प्राप्ति होती है। इस शाश्वत शास्त्रीय तत्त्वको हृदयङ्गम करनेवाले वेदमहर्षियोंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थचतुष्टयको अधिगत करनेके लिये अन्य अनेक अनुष्ठानोंसे पूर्व संस्कार और शिक्षापर विशेष बल दिया; क्योंकि **'संस्कारदोषादिन्द्रियदोषाच्च अविद्या'**— संस्कार-दोष और इन्द्रिय-दोषके कारण अविद्या उत्पन्न होती है और अविद्यासे ही अभिभूत होकर मनुष्य अनेक प्रकारके दुरितों एवं पापोंकी ओर अग्रसर होता है। अविद्याजनित पतनोन्मुख समस्त विघातक प्रवृत्तियोंसे परिरक्षित रखते हुए विद्याजनित समस्त उन्मुखी प्रवृत्तियोंकी ओर प्रेरित करते रहनेके लिये जो चिरकालिक सत्र है, उसीको शिक्षा कहा जाता है। इस सत्रकी सफल और पूर्ण समाप्तिपर पुरुषार्थ-चतुष्टयकी उपलब्धिके अनुरूप विद्याव्रत स्नातकरूपमें उदीयमान सर्वशक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंका विकास ही भारतीय शिक्षाका प्रयोजन है।

भारतीय शिक्षा-सत्रको मुख्यतया तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया जा सकता है। प्रथम माताके प्रभावसे होनेवाली शिक्षा और संस्कार, दूसरी पिताके प्रभावसे होनेवाली और तीसरी आचार्यके प्रभावसे होनेवाली शिक्षा। यों तो गर्भाधानकी रात्रिसे पूर्व भावी पिता और माता दोनोंके लिये ही विद्या एवं व्रत-स्नातक बनकर अविप्लुत ब्रह्मचर्य-साधना करना आवश्यक है; क्योंकि आदर्श संतान उत्पन्न करनेके लिये एक ओर जहाँ भगवान् मनुका उत्कृष्ट अनुशासन यह है कि—

वेदानधीत्य वेदो वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥

(३।२)

'ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदकी तीनों शाखाओं अथवा दो शाखाओं या एक शाखाका मन्त्र-ब्राह्मणके क्रमसे अध्ययन कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये।'

—वहाँ उस आदर्शके परिपालनार्थ भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणीकी श्रेष्ठ साधना देखिये—

ब्रह्मचर्यं महद्घोरं चीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।
हिमवत्पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥

(महा० सौप्तिक० १२।३०-३१)

'मैंने बारह वर्षोंतक अत्यन्त घोर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके हिमालयकी घाटीमें रहकर बड़ी भारी तपस्याके द्वारा जिसे प्राप्त किया था, मेरे समान व्रतका पालन करनेवाली रुक्मिणीदेवीके गर्भसे जिसका जन्म हुआ है, जिसके रूपमें साक्षात् तेजस्वी सनत्कुमारने ही मेरे यहाँ अवतार लिया है, वह प्रद्युम्न मेरा प्रिय पुत्र है।'

इस उग्र साधनाके फलस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण और रुक्मिणीने प्रद्युम्नको प्राप्त किया। इस उदाहरणसे स्पष्ट होता है कि माता-पिताकी गर्भावस्थाके पूर्व संस्कारबलोपेत संतान उपलब्ध करनेके लिये किस प्रकारकी साधना करना आवश्यक है। यह साधना सम्पन्न होनेके उपरान्त नौ मास माताके गर्भमें कुक्षिस्थ बालक या बालिकाका न केवल शरीर ही निर्मित होता है, अपितु प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि समस्त अविकसित शक्तियोंका विकास अथवा विनाश माताके विचारों, भावनाओं, चेष्टाओं, संकल्पों और व्यवहारोंके अनुरूप होता रहता है। संस्कार और शिक्षा दोनों प्रकारकी शक्तियोंसे सुसम्पन्ना माताएँ अपने गर्भस्थ बालकके पूर्ण विकास-हेतु असाधारण सावधानीके साथ अपने इस नवमासिक जीवनकालको अनेक व्रतों और नियमोंके अनुसार व्यतीत करती हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टासे बालकका स्वरूप प्रभावित होगा— इस दृष्टिसे संकल्प, भावना और विचारमें क्षुद्रता, निम्नता अथवा पतनोन्मुखी प्रवृत्तियोंको किसी प्रकार आश्रय नहीं देतीं। गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयनपूर्वक उदीयमान शिशुका जन्म होता है। आजसे **'वेदोऽसि०'** इस पवित्र मन्त्रसे सर्वप्रथम सम्बोधित करते हुए माता-पिताद्वारा उत्पादित शिशुकी सुशिक्षाका प्रारम्भ जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूडाकर्मादि संस्कारोंके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समयमें होता रहता है। माताके सांनिध्यमें सतत रहते हुए भी समय-समयपर पिताके साक्षात् सम्पर्क, सदुपदेश और सुशिक्षासे वंशानुगत संस्कारजन्य अविकसित शक्तियोंका विकास बालकमें होने लगता है। बालककी नैसर्गिक प्रवृत्ति, अभिरुचि और चेष्टाओंसे प्रकट होने लगता है कि अब उसे अपने भावी जीवनके निर्माणके लिये किस प्रकारके आचार्यकी आवश्यकता है। अत्यन्त तेजस्वी बालकका पाँच वर्षकी आयुमें, किंतु अन्य प्रकारके बालकोंका आठ वर्षकी आयुमें अनुकरणीय चरित्र आचार्यके द्वारा उपनयन-संस्कार करनेका विधान शास्त्रकार मनोवैज्ञानिक आधारपर करते हैं। यह उपनयन-संस्कार उपवासपूर्वक करनेका विधान है। साधारणतया उपवासका अर्थ अनाहार और उपनयनका अर्थ समारोहके साथ तीन तागेका सूत्र या यज्ञोपवीत धारण करना मात्र समझा जाता है। वस्तुतः दोनों शब्दोंमें **'उप'** जिसका अर्थ सामीप्य है, समान है और **'वस'** एवं **'णीञ्'**—इन दोनों धातुओंका भी 'रहना' तथा 'लाना' लगभग समानार्थ ही है। दूसरे शब्दोंमें आचार्यका सामीप्य इतना घनिष्ठ हो जाय कि बालक और माताकी भाँति अन्तेवासी एवं आचार्यमें अभेद प्रतीत होने लगे। इतना ही नहीं, अपितु माता और पिता दोनोंके अभिन्न एकत्वकी प्रतिष्ठा आचार्यमें हो जाती है। इसी अभिन्न सम्बन्धको आथर्वण श्रुतिने अपने अमर शब्दोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

जिस बालकका आचार्य उपनयन करता है, उसे तीन रात्रिपर्यन्त अपने गर्भमें परिरक्षिततरूपमें रखता है और इस प्रकार आचार्यके गर्भमें परिपालित होकर जायमान गुणोपेत ब्रह्मचारीको अवलोकन करनेके लिये अनेक प्रकारके देवगण आते हैं। वस्तुतः जो ब्रह्मचारी अपने आचार्यकी अनुकम्पाका जहाँतक अपनेको भाजन बनानेमें समर्थ होता है और आचार्यके चरणोंमें बैठकर उनके अनुकरणीय चरित्रसे एवं पवित्र जीवनसे अनुप्राणित होनेका सुयोग प्राप्त करनेकी क्षमता अपने संस्कारजन्य जीवनमें रखता है, वही वेदारम्भ-संस्कारसे संस्कृत होकर समावर्तन-पर्यन्त न्यून-से-न्यून द्वादशवर्षव्यापी ब्रह्मचर्यके घोर व्रतका अनुष्ठान करके पुरुषार्थचतुष्टयकी उपलब्धिके निमित्त **'आयुरस्मासु धेहि, अमृतत्वमाचार्याय॰'**—इस श्रुतिवाक्यको कहनेका अधिकारी बन जाता है तथा आचार्यके आश्रममें, पर्वत और वनराजिविभूषित सरिताके सांनिध्यमें, ओषधि, वनस्पति, गुल्मलता, वीरुध, गवादि पशुसंघके मध्य, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, अग्नि, वायु, जल और आकाशके प्रभावसे प्रभावित होते हुए कह सकता है—**'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'**—मैं पृथ्वीका पुत्र हूँ, भूमि मेरी माता है। इन्हीं पवित्र आर्य-आश्रमोंमें विकासोन्मुख ब्रह्मचारी पवित्र पावमानी ऋचाओंको आत्मसात् करनेका अभ्यास करता है और ऐसे अभ्यासीके लिये **'तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्'**—यह सामश्रुति कामधेनु बनकर चारों पदार्थोंको अनायास प्रस्तुत करती है। इस प्रकारसे जब शिक्षा-सत्र सम्पन्न होता है, तब आचार्य और अन्तेवासी दोनों सगर्व एवं यथार्थ कह सकते हैं—

सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै॥

अर्थात् 'हम दोनों परस्पर एक दूसरेकी रक्षा करें, अधिगत विद्याप्रसादको परस्पर मिलकर उपभोग करें, परस्पर मिलकर अविद्यान्धकारको दूर करनेके लिये प्रयत्न करें, हम दोनोंके द्वारा अधिगत विद्या तेजस्विनी हो और हम दोनों परस्पर कभी किसी प्रकारसे द्वेष न करें।' इस श्रुतिवाक्यमें दिये हुए पाँच प्रयोजनोंको जब कभी, जहाँ-कहीं आचार्य और अन्तेवासी पारस्परिक व्यवहारमें लानेमें समर्थ होते हैं, वहीं प्राप्त विद्या वस्तुतः वीर्यवती होकर विद्यावंशको अविच्छिन्न-रूपसे अमर बनाती है, आचार्य और ब्रह्मचारी दोनोंकी साधना सफल होती है।

शिक्षा-सत्रके पूर्ण होनेपर आचार्यका अपने प्राणप्रिय अन्तेवासीके लिये उपदेश होता है—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ।

सत्य बोलो । धर्मका आचरण करो । स्वाध्यायका कभी त्याग न करो । सत्यका त्याग न करो । धर्मका त्याग न करो । शुभ कर्मोंका त्याग न करो । कल्याणकारी कर्मोंका त्याग न करो । स्वाध्याय और प्रवचनमें भी प्रमाद न करो । देवकर्म (यज्ञ) और पितृकर्म (श्राद्ध, तर्पण आदि) का त्याग न करो । माताको देवरूपसे पूजो । पिताको देवरूपसे पूजो । आचार्यको देवरूपसे पूजो । अतिथिको देवरूपसे पूजो ।

जबतक यह आदर्श शिक्षासत्र भारतके आचार्यों और ब्रह्मचारियोंमें अनुष्ठित होता रहा, तबतक भारतमें अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनोंकी समुचित उन्नति होती रही ।

शिक्षामूर्ति भगवान् आदिशंकराचार्य और उनकी दिव्य शिक्षाएँ

(डॉ॰ श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा)

आचार्य शंकरकी अवतारणाने विश्वके जन-मानसको सुदूरतक प्रभावित किया है । उन्होंने भारतीय जनमानसकी मूलभूत प्राणशक्ति—आध्यात्मिक चिन्तनको ग्रहणकर अद्वैत वेदान्तके रूपमें **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** (पृथ्वी ही परिवार है) के भारतीय आदर्शको विश्वके सामने प्रस्तुत किया था । उनकी शिक्षापद्धतिमें राष्ट्रिय एकता, अन्ता-राष्ट्रिय सद्भाव तथा मानव-जातिके सौहार्दका महान् आदर्श निहित है । धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा राष्ट्रिय क्षेत्रोंको अपने व्यक्तित्व, कृतित्व एवं चिन्तनसे प्रभावित करनेवाले आचार्य शंकरका शिक्षामृत पानकर हम आजके युगमें फैले हुए अनाचार, पापाचार, दुराचार, नास्तिकता और अधर्मके आसुरी प्रभावको समाप्त कर सकते हैं ।

शंकराचार्यकी दार्शनिक विचारधारा

आचार्य शंकरने अपने दार्शनिक विवेचनमें ब्रह्म, जगत्, आत्मा तथा मोक्ष आदिकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या की है । उनके अनुसार एकमात्र ब्रह्म ही विद्यमान है और एकमात्र वही व्यापक तथ्य है । मूलसत्ता होनेसे ब्रह्म सब पदार्थोंको व्यक्त करता है, किंतु स्वयं व्यक्त होनेके लिये किसीकी अपेक्षा नहीं रखता । उन्होंने ब्रह्मके सगुण-निर्गुण दोनों रूप स्वीकार किये हैं । मायावच्छिन्न होकर ब्रह्म जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और लयका कारण होनेसे सगुण ब्रह्म (ईश्वर) कहलाता है । निर्गुण ब्रह्म मायातीत होनेसे सर्वदा सम, एकरस, अद्वैत, अविकारी, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत तथा अभयरूप है । **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** और **'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'** आदि श्रुतियोंमें उनके इसी अद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है ।

भगवान् शंकराचार्यने ब्रह्म और आत्माके पूर्ण ऐक्यको स्वीकार करते हुए जगत्के प्रत्येक पदार्थको आत्मासे व्याप्त बताया है । उनके अनुसार आत्मा चेतन, व्यापक, आनन्दस्वरूप तथा उत्पत्ति-नाशरूप धर्मसे रहित है । एक अद्वैततत्त्व आत्मा ही मायाशक्तिके कारण ईश्वर एवं अविद्याकी उपाधिसे जीव-संज्ञाको प्राप्त होता है । आत्मा ब्रह्मसे अभिन्न होनेके कारण आधारभूत पक्ष है । इसके लिये उन्होंने पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक—ये तीन सत्ताएँ स्वीकार की हैं ।

ब्रह्मरूप शाश्वत सत्यकी अपरोक्षानुभूतिको ही आचार्य शंकर मुक्ति कहते हैं । मोक्ष-प्राप्ति मानव-जीवनका परम पुरुषार्थ है । मोक्षके इच्छुक व्यक्तिको इसके लिये इधर-उधर भटकनेकी आवश्यकता नहीं है । **'आत्मानं विद्धि'**—उपनिषदोंके इस उद्घोषके अनुसार उसे केवल अपनेको समझने (आत्मसाक्षात्कार करने) की आवश्यकता है । जीवात्मा तथा परमात्माकी भेदबुद्धिसे अज्ञान उत्पन्न होता है, उसका निराकरण ही मुक्ति है । उनके मतसे मुक्ति या ब्रह्म आनन्दमय नहीं, सत्यमय ही है । मुक्ति भी दो प्रकारकी है—जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति । जीवन्मुक्तिमें व्यक्ति निष्कामरूपसे कर्म करता है । उसके

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिये अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है और ब्रह्मबोध होनेपर कर्मादि-बन्धन समाप्त हो जाता है। प्रारब्ध-कर्मोंका क्षय होनेपर शरीर छोड़कर वह सदाके लिये मुक्त हो जाता है। यही विदेहमुक्ति है। आचार्य ज्ञानको कर्म और भक्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं। उनके अनुसार मोक्षका साधन एकमात्र ज्ञान है। इतना होनेपर भी अहंकार तथा स्वार्थबन्धन आदिसे मुक्त होनेके लिये तथा ज्ञान-प्राप्तिकी योग्यताके सम्पादन-हेतु उन्होंने निष्काम कर्म एवं वेदान्तके श्रवण, मननादिका विधान स्थान-स्थानपर किया है।

मीमांसाके अन्तर्गत आचार्य शंकरने प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द—इन तीन प्रमाणोंको स्वीकार किया है, किंतु धर्म तथा ब्रह्मके निर्णयमें उन्होंने शब्द (आगम)-प्रमाणको ही अन्तिम माना है। उनके अनुसार शास्त्र (वेद) ही कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें ज्ञान-प्राप्तिका साधन होनेसे अन्तिम प्रमाण है। शब्द-प्रमाणके अन्तर्गत वेद-शास्त्रोंके वचनको अन्तिम रूपसे सत्य माननेके कारण वेदोंका निरपेक्ष प्रामाण्य शांकर दर्शनमें स्वीकार किया गया है। श्रुति एवं तदनुकूल स्मृतिका प्रामाण्य निर्भ्रान्त तथा अन्तिम होनेसे इन दोनोंके आधारपर प्राप्त होनेवाले ज्ञानको सत्य माना जाता है।

शिक्षाका स्वरूप

दर्शन, धर्म एवं अध्यात्मके क्षेत्रमें भगवान् शंकराचार्यका कार्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने औपनिषद दर्शनपर आधारित जिस अद्वैत सिद्धान्तकी प्रस्थापना की तथा जीवनभर जनतामें घूम-घूमकर जिस आचार-मीमांसाका प्रचार किया, उससे उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षाके स्वरूपका पता चलता है। वस्तुतः उनकी महान् उपलब्धिका मूल्याङ्कन उनके शैक्षिक विचारोंसे हो सकता है। भारतीय समाजद्वारा 'जगद्गुरु'के रूपमें उनका अभिनन्दन किया जाना उनके इसी शैक्षिक मूल्याङ्कनका प्रतिफल है। उनके अनुसार शिक्षा व्यक्तिकी ज्ञान-प्राप्तिका साधन और अज्ञान-निवृत्तिका माध्यम है। यही उसके लिये मोक्षकारिका है। वे शिक्षाको मुक्ति-प्राप्तितक चलनेवाली ऐसी आध्यात्मिक प्रक्रिया मानते हैं, जिसके द्वारा व्यक्तिमें ब्रह्मभावका जागरण होता है, उसे अपने यथार्थ स्वरूपका बोध होता है, जीवन-जगत्के प्रति उसके व्यवहार तथा विचारोंमें निरन्तर परिवर्तन, परिमार्जन तथा संशोधन होता है और वह ब्रह्मात्मैक्यकी अनुभूति करने योग्य होकर ब्रह्मसाक्षात्कार करनेमें समर्थ हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद्में वर्णित परा विद्या तथा अपरा विद्याके आधारपर आचार्य शंकर शिक्षाको आध्यात्मिक तथा भौतिक शिक्षाके रूपमें दो प्रकारका मानते हैं। उनके अनुसार आध्यात्मिक शिक्षासे मनुष्यको सम्यक् ज्ञानकी प्राप्ति होती है और वह ब्रह्मसाक्षात्कार कर मुक्त हो जाता है। भौतिक शिक्षा सांसारिक विषयोंसे सम्बद्ध होनेसे आध्यात्मिक शिक्षाकी अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इसके अन्तर्गत धर्म तथा अधर्मके साधन एवं उनके फलसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंका अध्ययन होता है। इसीलिये आचार्य शंकरके अनुसार आध्यात्मिक शिक्षाको मानव-जीवनमें ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार करानेके कारण उपादेय माना गया है।

शिक्षा यथार्थ तथा अयथार्थका विवेक प्रदान करती है। आचार्यके अनुसार आत्मा यथार्थ वस्तु है और उसके अतिरिक्त शरीर, मन, बुद्धि तथा प्राण आदि समस्त जगत् अयथार्थ हैं। यह आत्मानात्मा-विवेक ही उनके अनुसार शिक्षाका मुख्य उद्देश्य है। वेदान्तकी शिक्षामें ब्रह्मकी धारणाका सर्वाधिक महत्त्व होनेसे शिक्षाका दूसरा उद्देश्य ब्रह्मके प्रति अनन्यभावको विकसित करनेका होना चाहिये। इसीसे शिक्षामें ब्रह्मनिष्ठाका उद्देश्य निर्धारित होता है। ब्रह्मके समान आत्माके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होनेसे छात्रोंको आत्मनिष्ठ बनाना शिक्षाका उद्देश्य है। आचार्य शंकरके अनुसार गुरु शिष्यको उपदेश करता है—**'तत्त्वमसि'** अर्थात् तू ब्रह्म है। यह महावाक्य उपदेशवाक्य है। इसके द्वारा शिष्यको ब्रह्म और आत्माकी एकताका बोध होता है। इस महावाक्यमें निहित एकताके भावका अनुभव करनेपर शिष्यको अनुभूति होती है— **'अहं ब्रह्मास्मि'** अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ।' यह महावाक्य अनुभूति-वाक्य है। बृहदारण्यकोपनिषद्के अनुसार आत्माका दर्शन, श्रवण,

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनन एवं निदिध्यासन करना ही जीवनका सर्वोच्च लक्ष्य है । अतः यही शिक्षाका उद्देश्य है । अद्वैतवाद आचार्य शंकरकी शिक्षाका सार है और यह मानव-जीवनकी सर्वोत्तम उपलब्धि है ।

सत्य, अहिंसा, दया, अपरिग्रह, एकता, प्रेम, परोपकार, तप, सहानुभूति, श्रद्धा तथा भक्ति आदि ऐसे जीवन-मूल्य हैं, जिन्हें आचार्य शंकरने अपने शिक्षा-दर्शनमें नैतिक मूल्योंके रूपमें प्रस्थापित कर मानव-समाजके कल्याणका मार्ग प्रशस्त किया है ।

शिक्षण-पद्धतियाँ

शांकर वेदान्तमें ब्रह्मबोधके लिये अनेक विधियोंका प्रतिपादन किया गया है । इन विधियोंमें श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनका अत्यधिक महत्त्व है । आचार्य शंकरने भगवद्गीताके भाष्यमें लिखा है—**'शास्त्राचार्योपदेश-शमदमादिसंस्कृतं मन आत्मदर्शने कारणम्'** अर्थात् शिक्षा-प्राप्तिमें शास्त्र, गुरुका उपदेश तथा छात्रकी मानसिक तत्परता नितान्त अपेक्षित है । शिष्यका गुरुके उपदेशको शान्तिपूर्वक सुनना श्रवण-विधिके अन्तर्गत आता है ।

श्रवणके पश्चात् शिष्य स्वयं तर्कद्वारा सुने हुएपर विचार करता है । केवल सुने हुए तक सीमित रहकर शिष्य पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता । श्रवण मननकी पूर्ण भूमिका है—

आगमोपपत्तिभ्यां हि निश्चितोऽर्थः श्रद्धेयो भवति ।

(बृ० उ० शां० भा० ४ । ५)

अर्थात् शास्त्र और युक्ति—दोनोंके ही द्वारा निश्चय किया हुआ अर्थ श्रद्धेय होता है । अतः छात्रके लिये केवल शास्त्रका अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उसे अपने पढ़े हुए विषयको युक्तिपूर्वक विचारना चाहिये तभी उसका बोध पूर्ण हो सकता है ।

मननके उपरान्त निदिध्यासनमें शिष्य श्रवण और मननके आधारपर प्राप्त सत्यका ठीक-ठीक निश्चय कर लेता है ।

आचार्य शंकरने प्रश्नोत्तर-विधिकी एक प्रभावशाली शिक्षण-प्रणालीका अपने ग्रन्थों (विवेकचूडामणि, उपदेशसाहस्री तथा प्रश्नोत्तरी आदि) में विस्तारसे प्रतिपादन किया है । इस प्रणालीमें शिष्यका गुरुसे प्रश्न पूछना और गुरुका उत्तर देना अथवा गुरुका प्रश्न पूछना और शिष्यका उत्तर देना—ये दोनों ही उनके शिक्षा-दर्शनमें देखनेको मिलते हैं । जब शिष्य गुरु अथवा अन्य विद्वान्‌के साथ बैठकर तर्क करते हुए परस्पर विचार-विमर्श करते हैं तो उनका ज्ञानवर्धन होता है और उन्हें विषय स्पष्ट होता है । यही वह तर्कविधि है, जो आचार्य शंकरके अनुसार शिष्योंके संशयोंका निराकरण करती है और उनका ज्ञानवर्धन करती है ।

गुरु-शिष्य

शांकर वेदान्तमें गुरुका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । गुरुके लिये आचार्य तथा उपाध्याय आदि शब्दोंका प्रयोग उसकी गरिमा, उच्चता तथा महत्ताके द्योतक हैं । गुरु केवल शास्त्रोंका ज्ञाता ही नहीं होता, अपितु वह ब्रह्मानुभूतिसम्पन्न होता है । मानसिक शान्ति, जितेन्द्रियता, सब प्रकारके भोगोंसे विरक्ति, अहंकारशून्यता, परोपकारपरायणता, अध्ययन-अध्यापनकी कुशलता तथा नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक विकासकी उत्कृष्टता गुरुके आभूषण हैं । आचार्यके अनुसार आचार्यवान् शिष्य ही ब्रह्मको जानता है । इस प्रकार गुरु शिष्यका आध्यात्मिक पिता तथा मार्गदर्शक है । उसके बिना छात्रको ज्ञान प्राप्त होना असम्भव है । इतना ही नहीं, गुरु शिष्यकी आत्मा है, उसकी प्रेरणाका अक्षय स्रोत है । वह केवल शिष्यका शिक्षण ही नहीं करता, अपितु उसे आत्मानुभूति कराकर शिवसे तादात्म्य करने योग्य बना देता है ।

गुरुकी भाँति शिष्य भी शिक्षाका महत्त्वपूर्ण अङ्ग है । वेदान्तकी शिक्षाकी समस्त व्यवस्था शिष्यके लिये है । इसीलिये छात्रको भी शिक्षाका महत्त्वपूर्ण अङ्ग मानते हुए उसकी योग्यताओंका पूर्ण विवेचन किया गया है । नित्यानित्य-वस्तु-विवेक, वैराग्य, शम-दमादि साधन तथा मोक्षकी इच्छा—ये चार योग्यताएँ वेदान्तके विद्यार्थीमें होनी चाहिये ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाठ्यक्रम

आचार्य शंकरकी अवतारणा भारतीय इतिहासमें वैदिक सनातनधर्मके एक ऐसे नेताके रूपमें हुई थी, जिसने वैदिक धर्मका पुनरुद्धार किया और वेदान्तकी शिक्षाको सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। उस समय बौद्ध, जैन आदि नास्तिक लोगोंके प्रभावसे वेदोंकी अवमानना, औपनिषद दर्शनकी उपेक्षा तथा श्रुति-स्मृतिसम्मत सनातनधर्मकी आचार-पद्धतिकी अवहेलना अपने चरम सीमापर पहुँच गयी थी। आचार्य शंकरने वैदिक दर्शनपर आधारित शिक्षा-पद्धतिके विकासद्वारा लोगोंको वेदोपनिषद्-वेदान्त तथा गीता आदि श्रुति-स्मृतिरूप सच्छास्त्रोंके पठन-पाठनकी ओर प्रेरित किया। वर्णाश्रम-व्यवस्था तथा प्राचीन आश्रमप्रणालीको पुनरुज्जीवित कर उन्होंने साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मयके अध्ययन-अध्यापनका अपने शिक्षा-दर्शनमें समावेश किया।

उनके अनुसार शिक्षाका पाठ्यक्रम कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे कोई व्यक्ति जब चाहे परिवर्तित कर ले और अपने मनकी भावनाके अनुरूप उसमें संशोधन कर ले। इसके विपरीत उन्हें तो ऐसा पाठ्यक्रम स्वीकार्य है जो शाश्वत सत्य (ब्रह्म) का प्रकाशक हो तथा मनुष्यको उसका परम लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्त करानेमें सहायक हो। ऐसा पाठ्यक्रम वेदोपनिषद्, पुराण, रामायण, गीता तथा मन्वादि धर्मशास्त्र ही हो सकते हैं। शास्त्रोक्त विधिसे इनका पठन-पाठन ही जीवनमें श्रेयस्कर हो सकता है।

महान् शिक्षा-दार्शनिक आचार्य शंकर

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट होता है कि आचार्य शंकर विश्वके उन महान् शिक्षाविदोंमें अन्यतम हैं, जिन्होंने शिक्षा-जगत्को वेद-शास्त्रानुमोदित अध्यात्मवादपर आधारित शिक्षा-व्यवस्था देकर मानवताको पतनके गर्तमें पतित होनेसे बचाया है। 'मठाम्नाय' में उन्होंने जिस शिक्षा-योजनाका प्रतिपादन किया है, वह विश्वके शिक्षा-इतिहासमें अनूठा उदाहरण है। उन्होंने अद्वैत वेदान्त और सनातनधर्मकी शिक्षाका प्रचार करनेके लिये देशकी चारों दिशाओं—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिममें चार पीठोंकी स्थापना की। ये चारों मठ ही उनकी शिक्षा-योजनाके अङ्ग हैं। इनके द्वारा वे वेदान्तकी शिक्षाको जन-शिक्षाका रूप देना चाहते थे और आधुनिक विश्वविद्यालयोंकी भाँति युग-युगोंतक शिक्षाकेन्द्रोंके समान इनका विकास करना चाहते थे। इन पीठोंकी स्थापनाका उद्देश्य न केवल शिक्षा-प्रसार था, अपितु देशके चारों कोनोंको धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा राष्ट्रिय दृष्टिसे एक-दूसरेसे समन्वित कर भारतकी एकता एवं अखण्डताको सुदृढ़ बनाना था।

विगत कई वर्षोंसे देशमें शिक्षापर विचार-विमर्श बड़े जोर-शोरसे चल रहा है। भारत-सरकारने 'नयी शिक्षा-नीति'-के नामसे जिस शिक्षा-व्यवस्थाको प्रचारित किया है, उसके अन्तर्गत देशभरमें शिक्षा-गोष्ठियों, विद्वत्सम्मेलनों तथा शिक्षा-शिविरोंके आयोजन चल रहे हैं। अनेक राज्योंमें नयी शिक्षा-नीतिके अनुसार शिक्षा-व्यवस्थामें अनेक परिवर्तन हुए हैं, किंतु सबसे दुःखद पहलू यह है कि स्वराज्य-प्राप्तिके चालीस वर्ष बीतनेपर भी आध्यात्मिक, धार्मिक और नैतिक—इन सच्ची शिक्षाओंकी निरन्तर उपेक्षा होती चली आ रही है। यही स्थिति इस नयी शिक्षा-नीतिकी भी है। इसमें भी छात्रोंको धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सच्ची भारतीय शिक्षा देनेकी समुचित व्यवस्थाका न होना देशका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। संस्कृत-भाषा हमारे देशकी आत्मा है। हमारा सम्पूर्ण धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक साहित्य इसी महान् भाषामें उपलब्ध है, किंतु इतना होनेपर भी उसकी उपेक्षा करना हमारे साथ कितना बड़ा विश्वासघात है? वस्तुतः आज देश, धर्म और संस्कृतिपर बड़ा भारी झंझावात आया हुआ है। भगवत्कृपासे अवतरित 'कल्याण'का 'शिक्षाङ्क' तथा भगवान् श्रीशंकराचार्यके महान् शिक्षा-दर्शनकी सुदृढ़ पतवार ही हमें पार लगा सकती है। बस, यही आशाकी किरण दीख रही है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
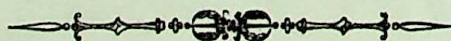
शिक्षाका मूल उद्देश्य एवं इसका महत्त्व

(भोगवर्धनपीठाधीश्वर ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्रीकृष्णानन्दसरस्वतीजी महाराज)

यद्यपि साध्य-साधनकी दृष्टिसे शिक्षादि सभी साधनोंके महातात्पर्यका पर्यवसान सजातीय-विजातीय-स्वगतभेदशून्य-नित्योपलब्धिस्वरूप नित्यशुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वप्रकाश-चैतन्य-स्वात्मस्वरूप आनन्दमात्र करपादमुखोदरादि सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें ही है तथापि भगवन्निःश्वासभूत भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सादि पौरुषेयदोषरहित अपौरुषेय वेदादि-सच्छास्त्रप्रवर्तित अनादि-अविच्छिन्न परम्पराप्राप्त सर्वभूतहितरत शिष्टद्वारा परिगृहीत विश्वकल्याणकारिणी मातृशतादपि हितैषिणी उभयलोकसाधिनी सत्-शिक्षामें भी अवान्तर तात्पर्य विद्यमान है ।

शिक्षाके बिना किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्रकी सभ्यता-संस्कृतिकी लौकिक, पारलौकिक, व्यावहारिक, पारमार्थिक उन्नति सम्भव नहीं है । शिक्षाके बिना कोई भी अपने वास्तविक लक्ष्यको न प्राप्त कर सका, न कर पा रहा है, न कर पायेगा । इस दृष्टिसे शिक्षाकी सार्वभौम व्यापकता एवं प्रधानता सिद्ध ही है । शिक्षाके बिना सर्वत्र सभी क्षेत्रोंमें अन्धकार-ही-अन्धकार है, लक्ष्यकी अप्राप्ति है । अतः कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यकान्तर्गत तैत्तिरीयोपनिषद्का चरम तात्पर्य-साध्य-फल-रस-स्वरूप ब्रह्मानन्दवल्लीमें होते हुए भी उससे पहले ही प्रारम्भमें प्राथमिकता शीक्षावल्लीके द्वारा शिक्षाको ही दी गयी है ।

शीक्षाध्यायका प्रारम्भ करते हुए दूसरे अनुवाकमें **'शीक्षां व्याख्यास्यामः । वर्णः स्वरः मात्रा बलम् । साम संतानः' इति शीक्षाध्यायः** । यहाँ शीक्षामें दीर्घ ईकार छान्दस है । **'छन्दसि दृष्टानुविधिः'; दैर्घ्यं छान्दसम् इति भाष्योक्तेः** । इसलिये **'शिक्षां व्याख्यास्यामः ।'**

शिक्षते अनया इति शिक्षा वर्णाद्युच्चारलक्षणम् । शिक्षन्त इति वा शिक्षा वर्णादयः । शिक्षैव शिक्षा । तत्र वर्णोऽकारादिः । स्वर उदात्तादिः । मात्रा ह्रस्वाद्याः । बलं प्रयत्नविशेषः । सामवर्णानां मध्यमवृत्त्योच्चारणं समता । संतानः संततिः संहिता इत्यर्थः । एष हि शिक्षितव्योऽर्थः ।(शांकर॰ भाष्य) क्योंकि—

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीडयेत् ।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥

—यही वेद तथा शिक्षा, व्याकरण आदि वेदाङ्ग भी मानते हैं । यथायोग्य उच्चरित एक पद-शब्द भी कामधेनुकी तरह होता है—**'कामधुग् भवति'** ।

शिक्षा ही स्वर-व्यञ्जन-मात्रादिसे प्रारम्भ होकर वर्ण, शब्द, पद, वाक्य, गद्य-पद्य-छन्द-काव्य-संज्ञा-संज्ञी, नाम-नामी, अभिधानाभिधेय-स्वरूपोंसे युक्त होकर अन्तमें ब्रह्ममें पर्यवसित होकर—**'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'**—इस प्रकार ब्रह्मको बताकर ब्रह्म ही बना देती है । **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति,' 'विमुक्तश्च विमुच्यते'** । शिक्षा ही स्वस्वरूपस्थित कर देती है ।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन गम्यते ॥
शब्दशक्तेरचिन्त्यत्वाच्छब्दादेवापरोक्षधीः ।
प्रसुप्तपुरुषो यद्वच्छब्देनैवानुबुद्ध्यते ॥
अगृहीत्वैव सम्बन्धमभिधानाभिधेययोः ।
हित्वा निद्रां प्रबुद्ध्यन्ते सुषुप्ते बोधिताः परैः ॥
अत्यन्तासत्यपि ह्यर्थे ज्ञानं शब्दः करोति हि ।
तेनोत्सर्गे स्थिते तस्य दोषाभावात् प्रमाणता ॥

शब्द ही ब्रह्म है । शब्दसे ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है । शब्द स्वर, व्यञ्जन, वर्ण, मात्रादिका जोड़-तोड़ ही है । कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं जो शब्दसे अनुविद्ध न हो । यह सब मूल शिक्षाका ही महत्त्व है । अतः वेदके छः अङ्गोंके संग्राहक श्लोक-वाक्यमें भी अन्यान्य अङ्गसंख्याका अक्रम होते हुए भी 'शिक्षा'-अङ्गकी प्राथमिकता सभी क्रमोंमें सुस्थिर एवं प्रथम है—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः ।
ज्योतिषामयनं चैव षडङ्गो वेद उच्यते ॥

पाठान्तर—

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः।
छन्दोविचितिरित्येतैः षडङ्गो वेद उच्यते॥

कोई कितना भी सुन्दर क्यों न हो, किंतु नासिकाके बिना वह शोभा नहीं पाता। लोकभाषामें भी अशोभनीयको नक्कटा—कटी नाकवाला कहते हैं। शिक्षा वेदभगवान्‌की नासिका है और ब्रह्मकी सिद्धि वेदाधीन है—**'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्'**। **'शास्त्रयोनित्वात्'**—ब्रह्म शास्त्रयोनि है। ब्रह्मसूत्र ३ शास्त्रयोनित्वाधिकरण ही है, जहाँ यह सिद्ध किया गया है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

अग्निपुराणके ३३६वें अध्यायका नाम ही **'शिक्षानिरूपणाध्याय'** है। वहाँ भी शिक्षाका प्रारम्भ स्वर, व्यञ्जन, वर्ण और मात्रादिसे ही होता है, जो इस प्रकार है—

वक्ष्ये शिक्षां त्रिषष्टिः स्युर्वर्णा वा चतुराधिकाः।
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः॥
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः।
अनुस्वारो विसर्गश्च ᳵ कᳵपौ चापि पराश्रितौ॥
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च।
रङ्गश्च खे अरँ प्रोक्तं हकारः पञ्चमैर्युतः॥
अन्तःस्थाभिः समायुक्त औरस्यः कण्ठ्य एव सः।
आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया॥
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च॥

अस्तु, भरत भी यहींसे शिक्षाका प्रारम्भ मानते हैं—**'तत्र अकारादिवर्णानां स्थलकरणप्रयत्नबोधिका अकुहविसर्जनीयाः कण्ठाः, इत्यादिका शिक्षा इति भरतः।'**

शास्त्रोंमें किन्हीं-किन्हीं स्थलोंपर साधकको साध्यतक सही-सही, ठीक-ठीक रूपसे पहुँचानेके लिये, साध्य लक्ष्यकी प्राप्ति करानेके लिये ही साध्यकी अपेक्षा साधनका महत्त्व अधिकाधिक कहा जाता है। कहीं-कहीं निन्दा तो नहीं, किंतु निन्दाभास-जैसा भी लगता है। परंतु ऐसी जगह—**'नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुम् अपितु विधेयं स्तोतुं प्रवर्तते'**—निन्दामें तात्पर्य नहीं, अपितु विधित्सित विधेयकी प्रशंसामें तात्पर्य है। अन्यथा—**'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया'** तथा **'तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व'**, **'दक्षिणावन्तोऽमृतं भजन्ते'**, **'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्'** आदि वाक्योंमें विरोध आयेगा? किंतु विरोध है नहीं। इस तरहकी सभी जगहोंमें विधेयकी स्तुतिमें ही तात्पर्य है।

'मानाधीना मेयसिद्धिः', **'प्रयत्नाधीना कार्यसिद्धिः'**, **'साधनाधीना साध्यसिद्धिः'**, **'सेवाधीना सेव्यसिद्धिः'**—इन सब न्यायोंसे साधनका विशेष महत्त्व होना ही चाहिये; क्योंकि निश्छिद्र साधनसे ही अभीष्ट साध्य लक्ष्यकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं। भले ही शुद्धाद्वैतियोंके यहाँ प्रमेय बलमें, स्वरूपसामर्थ्यमें श्रीप्रभु ही साधन हों ***'साधन सिद्धि राम पग नेहू'***, किंतु साधनकी महत्ता तो है ही। साधन तो है ही, भले ही वह पुष्टिमार्गमें भी भगवदनुग्रह ही हो। चीरहरणलीलामें सच्छिद्र साधन हो रहा था; क्योंकि **'न विवसनः स्नायात्'**—विगतवस्त्र होकर स्नान न करे—यह श्रौतविधि है। इसका उल्लङ्घन हो रहा था। श्रीकृष्ण-प्रेम-द्रवस्वरूपा श्रीयमुनाजीमें नग्न-स्नान हो रहा था, जो साध्य लक्ष्य-फल-प्राप्तिमें बाधक था, छिद्र था। स्वयं श्रीप्रभुने आकर उसे पूर्ण किया तथा विश्वके सर्वोत्कृष्ट लोकसंग्रही प्रभु श्रीकृष्णने इस लीलाके माध्यमसे अनेक प्रकारकी लोक-शिक्षा देते हुए नग्न-स्नान न करनेकी भी शिक्षा दी।

साधनके विशेष महत्त्वकी दृष्टिसे ही ये सब शास्त्र एवं महापुरुषोंकी उक्तियाँ हैं—

अद्वैतं परमार्थो हि द्वैतं भजनहेतवे।
तादृशी यदि भक्तिः स्यात् सा तु मुक्तिशताधिका॥
ब्रह्मानन्दो भवेदेष द्विपरार्धगुणीकृतः।
नैव भक्तिसुधाम्भोधेः परमाणुतुलामपि॥

श्रीकपिलजी भी कह रहे हैं—

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा॥

(श्रीमद्भा०३।२५।३३)

प्रातःस्मरणीय श्रीगोस्वामीजीने भी मानसमें इसी दृष्टिसे कहा है। *'अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥'* क्योंकि आगे चलकर वे ही कह रहे हैं—*'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥'* यह भी परम उत्कृष्ट शिक्षा ही है कि निश्छिद्र साधनमें दृढ़तासे लग जाओ, फलादि-प्राप्तिकी चिन्ता न करो, उधर मत देखो। भजन-साधनमें ठीक-ठीक लगे रहनेसे भजनीय साध्य तो अवश्य ही प्राप्त हो जायगा।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' शिक्षा ही तो है। **'अनिच्छतो गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते'** (श्रीमद्भा० ३।२५।३६)। इसीलिये श्रीव्रजेश्वरी नन्दरानी यशोदाम्बा अपने अङ्कमें विराजमान वात्सल्य-स्नेह-परिपूरित हृदयस्तनसे झरते हुए स्तन्यपानरत मुक्त-मुनीन्द्र-योगीन्द्र-देवेन्द्रादि-ब्रह्म-शिव-शुक-सनकादि-परिसेवित सर्वफल सर्वसेव्य सर्व-साध्य बालमुकुन्द भगवान् श्रीकृष्णको गोदसे नीचे उतारकर नन्दभवनके प्राङ्गणमें रोते हुए छोड़कर सामने अँगीठीपर औटते हुए साधनोपकरण एवं सेवोपकरणरूप पद्मगन्धा गौओंके दूधको उफनता देखकर उसे बचानेके लिये दौड़ पड़ीं—

तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं
स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम्।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया-
वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते॥

(श्रीमद्भा०१०।९।५)

तब प्रभुने कहा—'अम्ब! क्या पूतसे दूध प्यारा है?' अम्बाने स्नेहपूर्वक कहा—'वत्स! पूतके लिये दूध प्यारा है न कि दूधके लिये दूध प्यारा है।' सेव्यके लिये ही सेवा एवं सेवाके उपकरण प्यारे हैं। साध्यके लिये ही साधन एवं साधनके उपकरण प्यारे हैं। चूँकि वे स्वयं जानती हैं कि सेवा न हो तो सेव्य कहाँ? साधन न हो तो साध्य कहाँ? और सेवोपकरणके बिना सेवा कहाँ? और साधनोपकरण न हो तो साधन कहाँ? अतः कहीं-कहीं साधनको ही महत्त्वकी दृष्टिसे साध्य कह दिया है। करणको ही साध्यस्वरूप बतला दिया है; क्योंकि वह उसका प्रापक है—**'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्'** (गीता ४।२४)। इसकी व्याख्यामें भगवान् भाष्यकारने लिखा है— **'अर्प्यते अनेन इति अर्पणं स्रुक्स्रुवादिकरणं येन करणेन ब्रह्मविद् हविः अग्नौ अर्पयति तद्ब्रह्मैवेति।'** (शांकर भाष्य)। इस दृष्टिसे शिक्षा भी सभी लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिये अत्यधिक अन्तरङ्ग एवं महत्त्वपूर्ण साध्य कही जा सकती है। संसारकी सभी भोग्य वस्तुएँ परिमार्जित, सुसंस्कृत, शुद्ध होनेके बाद ही उपभोगयोग्य होकर काममें आती हैं। अन्न-जल-वस्त्रादि, स्वर्ण-रजतादि धातुएँ, हीरा-मोती-रत्न-मणि-रस-रसायनादि सभी शुद्ध करके ही भोगके योग्य होते हैं, जैसे-तैसे नहीं। खनिज पदार्थ जैसे खानोंमेंसे निकलते हैं वैसे ही काममें नहीं आते। बड़ी-बड़ी रिफाइनरियाँ—गोल्ड-रिफाइनरी, सिल्वर-रिफाइनरी, आएल-रिफाइनरी, काटन-रिफाइनरी, जीन-प्रेस, स्टील-रिफाइनरी आदि किसलिये हैं? ये इन सब वस्तुओंको सुसंस्कृत-परिमार्जित करके काममें आनेके योग्य बनानेके लिये ही तो हैं, अन्यथा इनकी क्या आवश्यकता है?

जब जड़ पदार्थ भी संस्कारके शोधन-परिमार्जनके बिना उपभोगयोग्य नहीं होते तो फिर चेतन मनुष्यके संस्कारकी शोधन-परिमार्जनकी क्या आवश्यकता नहीं है? या कितनी आवश्यकता है, सुज्ञ विचारक राष्ट्रहितैषी इस बातका गम्भीरतासे विचार करेंगे।

शिक्षाके द्वारा मनुष्य सुसंस्कृत होता है, योग्य होता है, उपभोगके योग्य होता है। कोई भी राष्ट्र, समाज, सभ्यता, संस्कृति, कुल, परिवार-पड़ोस, टोला-मुहल्ला, व्यष्टि-समष्टि शिक्षित व्यक्तिका उपभोग करके समुन्नत, प्रफुल्लित, आह्लादित होकर सभी क्षेत्रोंमें सही-सही ढंगसे आगे बढ़ता है तथा निर्भय, निरातङ्क, निष्कण्टक, निःशङ्क रहता है। इसीलिये किसी अच्छे विचारकने विचारपूर्वक कहा है—'बच्चे पैदा होते हैं, किंतु पुत्र उत्पन्न किये जाते हैं। मूर्ख अशिक्षित तो होते हैं, किंतु शिक्षित तो बनाये जाते हैं। वस्त्र मैला किया नहीं जाता, मैला तो हो जाता है, किंतु

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वच्छ होता नहीं, स्वच्छ तो किया जाता है । सभी अच्छी वस्तु प्रयत्नसापेक्ष हैं, त्याग-तप-तितिक्षा साध्य हैं ।

तीन सजावत देशको संती संत व शूर।
तीन लजावत देशको कपटी कायर क्रूर॥

संती, संत और शूर तैयार किये जाते हैं, किंतु कपटी, कायर, क्रूर तो स्वयं होते हैं । सही शिक्षासे ही संती, संत और शूर होते हैं । शिक्षा ही इनकी जननी है । शिक्षा-जननीके जने हुए इन सुपूतोंकी देशके प्रत्येक क्षेत्रमें भारी आवश्यकता है ।

इस भौतिक विज्ञानपूर्ण साइन्स एवं टेक्नालाजीके युगमें सभी वस्तुओंकी रिफाइनरियोंका आविष्कार हो रहा है, किंतु मनुष्यकी रिफाइनरीका आविष्कार कहीं दिखायी नहीं दे रहा है । यदि हो जाता तो फिर क्या था ? सारी समस्याएँ हल हो जातीं, किंतु शास्त्रकारोंने जहाँ सभी वस्तुओंके संस्कारका विधि-विधान किया है, वहाँ मनुष्यका संस्कार करनेपर पूरा जोर दिया है तथा उसका भी विधि-विधान तौर-तरीका बतलाया है, जो संस्कार-नामसे प्रख्यात हैं । कोई भी वस्तु दोषमार्जन-अतिशयाधान-हीनाङ्ग-पूर्तिके बिना काममें नहीं आती । संस्कारोंका काम यही है—वस्तुमात्रसे दोषको निकाल देना, अतिशयता ला देना और हीनताकी पूर्ति करना । मनुष्यमें भी इनकी आवश्यकता है । —क्रमशः

शिक्षकके तीन गुण

(आचार्य विनोबा भावे)

परमात्मा परम गुरु है । वह शिक्षा देता है । हमें उसका अनुकरण करके सीखना-सिखाना है । गुरु अत्यन्त तटस्थ होकर सिखाता है । वह कोई वस्तु लादता नहीं है । इन दिनों कुछ प्रयत्न सरकारी तौरपर हो रहे हैं । जिस समय जिन विचारोंकी सरकारें बनी हुई होती हैं, वे अपने विचारोंका विद्यार्थियोंपर असर डालना चाहती हैं, अपने शिकंजेमें विद्यार्थियोंके दिमागको ढालना चाहती हैं । स्टालिनके जमानेमें रूसमें एक इतिहास पढ़ाया जाता था । स्टालिन पदच्युत हो गया, तो उसके बाद वहाँ थोड़े दिनोंके लिये इतिहास सिखाना बंद कर दिया गया । फिरसे नया इतिहास सिखाना प्रारम्भ हुआ, जिसमें स्टालिन देवताका नहीं, अपितु दूसरे देवताका अधिष्ठान हुआ । वास्तवमें जो हुआ वह इतिहास है । किंतु अब तो स्थिति यह है कि जो हम ध्यानमें रखना चाहते हैं, वह इतिहास है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न राज्य-व्यवस्थाएँ आती हैं, तो अपने बनाये विचारोंमें विद्यार्थियोंके दिमागोंको ढालनेकी चेष्टाएँ होती हैं । यह बहुत बड़ा खतरा सब देशोंमें मौजूद है और अपने देशमें भी है ।

गुरुओंको कम-से-कम तीन गुणोंकी आवश्यकता रहती है । एक गुण शिक्षकोंमें चाहिये विद्यार्थियोंके प्रति प्रेम । विद्यार्थियोंके लिये प्रेम चाहिये, अनुराग चाहिये, वात्सल्य चाहिये । यह शिक्षकोंका बहुत बड़ा गुण है, जिसके बिना कोई शिक्षक बन ही नहीं सकता ।

शिक्षकका दूसरा गुण है निरन्तर अध्ययनशीलता । प्रतिदिन नया-नया अध्ययन जारी रहे और ज्ञानवृद्धि सतत होती चली जाय, ये ही गुण शिक्षकमें प्रथम चाहिये । यदि आपमें वात्सल्य है, किंतु ज्ञान नहीं है, तो आप उत्तम माता बन सकते हैं, गुरु नहीं बन सकते । साधारणतः माताओंसे ज्ञानकी अपेक्षा हम करते भी नहीं हैं । वात्सल्य नहीं है, तटस्थता है और ज्ञानकी साधना आप करते हैं तो तत्त्वज्ञानी बन सकते हैं, विचारक बन सकते हैं, निवृत्तिनिष्ठ बन सकते हैं और आपका बहुत बड़ा लाभ देशको मिल सकता है, किंतु तब भी आप गुरु नहीं बन सकते । इसलिये गुरुके लिये आवश्यक है निरन्तर चिन्तनशीलता तथा अत्यन्त वात्सल्य और प्रेम ।

तीसरा एक गुण और होना चाहिये । इन दिनों विद्यार्थियोंके दिमागपर राजनीतिका बड़ा आक्रमण है । विद्यार्थी हैं शिक्षकके हाथमें । यदि शिक्षक भी राजनीतिमें रमे हों और उनके सिरपर राजनीतिका वरदहस्त पड़ा हो तब तो समझना चाहिये कि गङ्गा मैया समुद्रकी शरणमें

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गयीं और समुद्रने उन्हें स्वीकार किया नहीं, तो जो दशा गङ्गाकी होगी, वही दशा विद्याकी होगी। अतः शिक्षकोंका बहुत बड़ा अधिकार है कि वे सब राजनीतिसे मुक्त रहें।

अपने यहाँ राजसत्ता थी, किंतु वह सत्ता गुरुपर नहीं थी, गुरु उससे परे था। होना यह चाहिये कि जैसे न्यायालय बिलकुल शासनके ऊपर हैं, शासनके विरुद्ध भी निर्णय दे सकते हैं, यद्यपि शासनकी ओरसे उन्हें वेतन मिलता है, किंतु वे शासनके अधीन नहीं हैं, यही बात शिक्षाके विषयमें मान्य होनी चाहिये। यह बात ध्यानमें रहे कि आजकल हम 'पोलिटिशियन्स' राजनीतिज्ञोंकी पकड़में हैं और पकड़मेंसे हटे बिना शिक्षाका कोई प्रश्न हल नहीं होगा।

भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रसे शिक्षा

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी शास्त्री, काव्यतीर्थ, कविरत्न, विद्याभास्कर)

जिनके चरण-कमलोंकी सदा सेवा करनेवाले मनुष्यको सफलता शीघ्र ही स्वीकार कर लेती है, उन वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको हृदयमें धारण करता हुआ मैं उनके चरित्ररूपी अमृतकी तरङ्गोंसे अपनी वाणीको पवित्र करता हूँ।

उद्यानोंके पुष्प, आकाशके नक्षत्र, पर्वतोंके वृक्ष, मेघोंके बिन्दु, पृथ्वीके परमाणु, समुद्रकी तरङ्गें, सज्जनोंके गुण सम्भव है गिने जा सकें, किंतु सर्वाधार, सर्वेश्वर, महामहिम, प्रत्यक्ष परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णके अपरिमित, परम पवित्र, पापनाशकारी, सज्जनहृदयविहारी गुणोंकी गणना अनेक कल्पोंमें भी सम्भव नहीं है। अतः उनके अपार गुणरत्नाकरसे कुछ रत्न उद्धृत करके पाठकोंके मनोविनोदार्थ सादर समर्पण करनेकी चेष्टा की जा रही है।

इस संसारमें जितने भी जीवधारी दृष्टिगोचर होते हैं, उन सबके मनमें यही इच्छा रहती है कि हम सुखी रहें, कोई दुःख हमें न सताये, किंतु उनमें अधिकतर सच्चे सुखकी प्राप्तिके उपायको न जाननेके कारण इधर-उधर भटकते हुए स्वप्नमें भी सुखके दर्शन किये बिना ही इस असार संसारको छोड़ जाते हैं और अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार बारंबार जन्म-मरणकी दारुण यातनाओंको भोगनेके लिये चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर काटा करते हैं। ऐसी दशामें दयालु पुरुषोंने निरन्तर ध्यानावस्थित होकर सच्चे सुखका अत्यन्त सरल, परम पवित्र, सर्वोपयोगी, निष्कण्टक एक ही मार्ग ढूँढ़ निकाला है, जिसपर चलकर बालक-बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष-नपुंसक, बलवान्-निर्बल, रोगी-नीरोगी, धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख, राजा-रंक, शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-नागरिक, पापात्मा-धर्मात्मा, बुद्धिमान्-निर्बुद्धि, एकाकी या कुटुम्बी, गृहस्थ या संन्यासी आदिमेंसे कोई भी क्यों न हो वह अपार, अद्भुत, अखण्ड परम सुखका अधिकारी हो जाता है। उस सच्चे सुखका मार्ग है भगवान् श्रीकृष्णकी निष्काम भक्ति, जिसके आश्रयसे सामान्य जीव भी चराचरका पूज्य और प्रातःस्मरणीय हो जाता है। स्वयं तो वह सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होता ही है; किंतु अन्योंको भी मुक्त करनेकी सामर्थ्य रखता है। वास्तवमें देखा जाय तो जीवको ईश्वर-भक्तिकी वैसी ही आवश्यकता है, जैसी कि मछलीको जलकी; क्योंकि जिस प्रकार जलसे अलग होकर मछली एक क्षण भी सानन्द नहीं रह सकती, उसी प्रकार भगवान्से अलग होकर जीव भी कुछ भी सुख नहीं प्राप्त कर सकता; क्योंकि परमात्मा अखण्ड अग्नि-भण्डारके समान हैं और जीव उनकी एक चिनगारीके समान है। जबतक चिनगारी अग्नि-भण्डारमें रहती है, तबतक उसमें वह सब शक्ति रहती है, जो अग्निमें है; किंतु ज्यों ही वह अग्नि-भण्डारसे पृथक् हुई कि उसकी सारी शक्ति प्रबल वायुके झोंकोंमें आकर लुप्त हो जाती है और उसका अस्तित्व मिट-सा जाता है। इसी प्रकार जीव जबतक प्रगाढ़ भक्तिके द्वारा ईश्वरमें मिला रहता है, तबतक वह सम्पूर्ण ईश्वरीय गुणोंसे परिपूर्ण रहता है, किंतु जहाँ वह उससे अलग हुआ अर्थात् उसने भगवद्भक्तिका त्याग

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया, वहीं वह अविद्यारूपी वायुके झोंकोंमें पड़ जानेके कारण अपनी समस्त शक्तिको खोकर अपने अस्तित्वको भी भूल-सा जाता है। ऐसी दशामें उसे जितनी ही दारुण यातनाएँ भोगनी पड़ें उतनी ही कम हैं। इससे सिद्ध हुआ कि कल्याणकामी पुरुषके लिये भगवद्भक्ति अमोघ रत्न है। अतः प्रत्येक स्थिर-बुद्धि, भले-बुरेका विचार रखनेवाले मनुष्यको उसका अवलम्बन अवश्य करना चाहिये। अब यह सोचनेकी आवश्यकता है कि भगवद्भक्ति करनेवाले मनुष्यका क्या कर्तव्य है।

संसारमें देखा जाता है कि यदि कोई मनुष्य किसी व्यक्तिकी भक्ति करना चाहता है तो वह निरन्तर उसका गुणगान करता हुआ सर्वदा उसके रूपको हृदयस्थ रखता है। जिन कामोंके करनेसे उसे घृणा है, उन्हें वह स्वप्नमें भी नहीं करता और जिन कामोंमें उसकी रुचि है, उन्हें प्राणपणसे भी करनेकी चेष्टा करता है। ऐसी दशामें वह जिसकी भक्ति करता है, वह उसपर अनुकूल हुए बिना नहीं रह सकता, इसी प्रकार सबसे पहले भगवान् श्रीकृष्णके भक्तोंको यह जाननेकी आवश्यकता है कि हमारे प्रभुको कौन-से कार्य प्रिय और कौन-से अप्रिय हैं। तदनन्तर उनके प्रिय काम करने और अप्रिय त्यागने चाहिये, फिर लगातार उनकी मधुर मूर्तिका ध्यान करते हुए निरन्तर नामस्मरणपूर्वक उनकी भक्ति-लताको अपनी श्रद्धारूपी सुधाकी पवित्र धारासे सदैव सींचते रहना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णको कौन-से काम प्रिय और कौन-से अप्रिय हैं, इसका निश्चय करनेमें किसी कठिनताका सामना नहीं करना पड़ता; क्योंकि सर्वात्मा, सर्वाधार, जगन्नियन्ता, दयाधाम, पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने अवतार लेनेके प्रयोजनकी घोषणा इस प्रकार की है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

'सज्जनोंकी रक्षाके लिये और दुष्टोंका नाश करनेके लिये तथा धर्मकी रक्षाके लिये मैं प्रत्येक युगमें शरीर धारण करता हूँ।' इससे स्पष्ट है कि शिष्टोंपर अनुग्रह, दुष्टोंका निग्रह और धर्मकी रक्षा भगवान्का प्रिय कार्य है। अतः सच्चे भगवद्भक्तोंको सर्वदा सचेष्ट होकर उपर्युक्त कार्योंको परिपूर्ण करनेमें यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखनी चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे उन भगवद्भक्ति-पथके पथिकोंपर प्रभुकी कृपा अवश्य होगी। यदि अपनेको भगवद्भक्त कहनेवाला व्यक्ति उपर्युक्त तीन कर्तव्योंके पालनसे विमुख है तो वह भगवद्भक्त नहीं कहला सकता; क्योंकि जो सच्चा प्रेमी है वह प्राणोंकी भी परवा न करके उसी कामको करता है जो उसके प्रेमास्पदके अनुकूल होता है। जो ऐसा नहीं कर सकता उसे प्रेमी कहलानेका कोई अधिकार नहीं है; क्योंकि प्रेमीका तन, मन, धन सब कुछ प्रेमास्पदके चरणोंपर न्योछावर करनेके लिये ही होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि सम्पूर्ण कल्याणोंके मूल भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति किस प्रकार प्राप्त होती है? इसका उत्तर वैष्णव-शास्त्रोंके अनुसार यही है कि राग-द्वेषसे रहित, आत्माराम, यथालाभसंतुष्ट, निरभिमान, जितेन्द्रिय, दुःख-सुखको समान समझनेवाले, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरसे रहित, सर्वत्र सर्वदा उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, यहाँतक कि प्रत्येक कार्यके करते समय भुवनमोहन, अशरण-शरण सर्वलोकपालपूजितपादपद्म, भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाले और सर्वदा उनके गुणानुवादको अपने चित्तकी शान्तिका साधन समझनेवाले पुरुषोंकी सेवासे उस भगवद्भक्तिरूपी अनर्घ्यमणिकी प्राप्ति होती है, जिसके प्रकाश और प्रभावसे अज्ञान-तिमिर और सांसारिक समस्त बन्धन वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार। भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र भागीरथीके समान पवित्र, कर्पूरके समान शुभ्र, मौक्तिकके समान उज्ज्वल, चन्दनके समान शीतल, चन्द्रमाके समान मनोहर, भगवान् शंकरके समान कल्याण-मूल, सरस्वतीजीके समान अखिल ज्ञानदायक, समुद्रके समान अपार और अगाध, पर्वत-शिखरके समान दुरारोह, अखिल लोक-लोचन भगवान् भास्करके समान अन्धकार-नाशक है। इसके श्रवण, मनन, आचरण और प्रचारसे ऐसा कौन-सा कार्य है जो न हो सके और ऐसी कौन-सी वस्तु है जो न मिल

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सके, किंतु बुद्धिकी मन्दताके कारण बहुत-से मन्दभाग्य बिना पूर्वापर सोचे भगवान्‌के चरित्रके ऊपर इस प्रकार आक्षेप करते हैं कि भगवान्‌ने व्रजभूमिमें रहते हुए दूध-दही, मक्खन-मिश्री आदि खाद्य पदार्थोंकी चोरी व्रजाङ्गनाओंसे विहार, गोपी-चीरहरण, वृषभका वध, स्त्री होनेपर भी पूतनाका वध आदि अनेक ऐसे कार्य किये हैं, जिनके कारण उन्हें ईश्वर समझना तो दूर, भला आदमी समझनेमें भी बाधा है । इसका उत्तर यह है कि जिन ग्रन्थोंमें उपर्युक्त चरित्रोंका वर्णन है, वे सभी ग्रन्थ भगवान् श्रीकृष्णको जगन्नियन्ता, जगदाधार, प्रत्यक्ष परब्रह्म मानते हैं । ऐसी दशामें उनके चरित्रोंका यथार्थ रहस्य वे ही जान सकते हैं ।

वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्णके आज्ञानुसार चलकर अपने जीवनको सुखमय बनाना एवं उनकी भक्तिके द्वारा मुक्तिको भी हस्तगत करना चाहिये, किंतु ध्यान रहे कि भगवद्भक्तोंको श्रीकृष्णके उन्हीं चरित्रोंके अनुसरण करनेकी आज्ञा है जो उनके उपदेशके अनुसार हैं । शास्त्रोंमें कहा भी है—

ईश्वराणां वचः सत्यं क्वचिदाचरितं तथा ।
यत्तेषां स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत्तदाचरेत् ॥

'ईश्वरोंका वचन ही कल्याणकारक है, कहीं-कहीं उनके आचरणका अनुसरण भी लाभदायक है । बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि ईश्वरोंका जो आचरण उनके उपदेशके अनुसार है उसीका अनुसरण करे, अन्यका नहीं ।'

ऐसी दशामें तो किसी शङ्का-समाधानकी आवश्यकता ही नहीं है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने कहींपर भी परद्रव्यापहरण, परस्त्री-गमन, दासी-रति, वृषभ-मारण, नारी-हत्या आदिकी आज्ञा नहीं दी है; प्रत्युत इनके विरुद्ध ही घोर प्रयत्न किया है । इतना सब उन आस्तिक पुरुषोंके लिये लिखा गया है जो भगवान् श्रीकृष्णको ईश्वर तो मानते हैं, किंतु उनके उपर्युक्त आचरणोंका संतोषजनक समाधान न जाननेके कारण अव्यवस्थित-बुद्धि रहा करते हैं । जो नास्तिक हैं उनके लिये तो यही उत्तर पर्याप्त है कि यदि आपलोग सात वर्षके बालकका सात दिन-राततक पर्वतको उँगलीपर उठाये रखना, सौ फणवाले साँपके सिरपर बालकका नाचना, सोलह हजार स्त्रियोंके पास एक ही समय एक पुरुषका निवास करना, अपनी सामर्थ्यसे सूर्यको छिपाकर ठीक समयपर पुनः प्रकट कर देना, एक शाकका पत्ता खाकर दस हजार मनुष्योंको तृप्त कर देना आदि कार्य असम्भव मानते हैं तो उपर्युक्त चरित्रोंको भी असम्भव क्यों नहीं मान लेते? क्योंकि असंख्य गायोंके अधिपति नन्दका पुत्र घी, दूध आदिकी चोरी नहीं कर सकता, ग्यारह-बारह वर्षका बालक सम्भोगका नाम भी नहीं जान सकता, बैलका सींग पकड़कर मारना तो दूर रहा, किंतु नन्हा-सा बालक लाठी लेकर उसके सामने जा भी नहीं सकता, महीनेभरका बालक दूध पीते-पीते किसी स्त्रीका प्राण-हरण नहीं कर सकता और ऐसा कहकर क्यों नहीं इन चरित्रोंको भी बिना हुआ ही समझ लेते हैं । इन परम गम्भीर, दुर्विज्ञेय, परम पावन चरित्रोंके अतिरिक्त सारा श्रीकृष्ण-चरित्र परम सरल, सबके अनुकरण करनेयोग्य और सर्वाभीष्टदायक है । मेरी समझमें तो संसारभरमें कोई भी ऐसा महापुरुष नहीं हुआ, जिसका चरित्र भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रके टक्करका हो ।

—क्रमशः

शिक्षा-व्यवस्थामें पुस्तकालयोंकी भूमिका

(श्रीनवीनचन्द्रजी मिश्र 'नवीन', एम्० ए०, साहित्यालंकार)

किसीने सच ही कहा है कि पुस्तकालय वह स्थान है जहाँ हम एक ही साथ युवा और वृद्ध, मृत और जीवित से मिलते हैं । इस दृष्टिसे पुस्तकालयोंका महत्त्वपूर्ण योगदान शिक्षा-व्यवस्थामें है; क्योंकि शिक्षा निःसंदेह रूपमें भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंसे जुड़ी हुई भी है और उससे परे भी है ।

पुस्तकालयोंकी उपयोगिताकी दृष्टिसे ही पं० श्रीजवाहरलालजी नेहरूने कहा था—'भारतके प्रत्येक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गाँवमें कम-से-कम एक पुस्तकालय होना चाहिये । इसका उद्देश्य केवल मेधावी पण्डितोंतक ही सीमित नहीं होना चाहिये, अपितु मेरी तो राय यह है कि प्रत्येक पुस्तकालय एक विश्वविद्यालयका रूप धारण करे ।'

नालन्दा विश्वविद्यालयका ऐतिहासिक पुस्तकालय इस बातका प्रमाण था कि हमारा देश इस विधासे अपरिचित नहीं था, किंतु दुर्भाग्यवश ऐसी अनेक धरोहरें लुटेरे विदेशियोंकी द्वेषपूर्ण दृष्टिके कारण नष्ट हो गयीं । यदि नेहरूजी उस गौरवशाली परम्पराको और आगे बढ़ानेकी बात करते थे तो यह हमारे विकासके लिये सर्वथा उपयुक्त व्यवस्था होती कि प्रत्येक गाँवमें एक छोटा पुस्तकालय होता, उसमें ज्ञान और विज्ञानकी युतिसे जनताको वास्तविक अर्थोंमें शिक्षित करनेकी व्यवस्था होती । उनका उद्देश्य साक्षर बनाना न होकर शिक्षित करना होता । इससे हम सरलतासे जनताको प्रबुद्ध बनानेमें सफल हो सकते थे ।

ऐतिहासिक दृष्टिसे इस देशमें स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व जो 'ग्राम-सुधार'-आन्दोलन चला था, उसमें ऐसी व्यवस्था थी भी । प्रत्येक पंचायतके अधीन एक पुस्तकालय रहा करता था, जिसमें न केवल पुस्तकें उपलब्ध होती थीं, अपितु समाचार-पत्र आदि भी उपलब्ध रहते थे ।

आज प्राइमरी स्कूलोंमें टी० वी० की व्यवस्था की गयी है, किंतु पुस्तकालयों अथवा वाचनालयोंके निर्माण और स्थापनाकी ओर सरकारका ध्यान नहीं गया है । इस ओर सामाजिक संस्थाओंका भी ध्यान नहीं है । यह अत्यन्त खेदजनक अवस्था है । वास्तविकता यह है कि वाचनालयोंके माध्यमसे हम ग्राम-ग्राममें एकता, समानता, स्वतन्त्रता और मौलिक चिन्तनकी अभिनव प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकते हैं ।

शहरसे लेकर देहाततक, विश्वविद्यालयसे लेकर प्राइमरी विद्यालयोंतक सरकार पुस्तकालयोंके निर्माणार्थ जो भी अनुदान देती है, वह एक तो पुस्तकोंका मूल्य देखते हुए अपर्याप्त होता है, दूसरे जो धनराशि मिलती है, उसकी या तो वास्तविक खरीद नहीं होती या फिर कमीशनके लोभमें सस्ती और अनुपयोगी पुस्तकें ही खरीदी जाती हैं । इसलिये जहाँ-कहीं भी सरकार पुस्तकालयोंके लिये अनुदान देती है, वहाँ उनके रख-रखाव तथा उचित उपयोगके नियन्त्रणके लिये उचित व्यवस्थासे ही इस प्रकारके अभियानका प्रारम्भ किया जा सकता है ।

पुस्तकों तथा समाचार-पत्रोंके मूल्योंमें वृद्धि हो जानेके कारण व्यक्तिगत पुस्तकालयों अथवा वाचनालयोंमें स्तरकी पुस्तकें अथवा समाचार-पत्र रखना सम्भव नहीं रह गया है । साथ ही अच्छी पुस्तकोंका प्रकाशन अथवा पुनर्मुद्रण भी आर्थिक कारणोंसे सम्भव नहीं हो रहा है । प्रकाशन और मुद्रण-व्यवस्थामें भी पूर्णरीतिसे सेवाविहीन स्वार्थवादी दृष्टि होनेके कारण भी अच्छी पुस्तकों और स्तरकी पत्रिकाओंका प्रकाशन प्रभावित हो रहा है । बहुत-सी अच्छी पाण्डुलिपियाँ सुविधाके अभावमें नष्ट हो जाती हैं ।

अच्छा होगा कि पुस्तकालयों और वाचनालयोंकी स्थापनाके लिये तथा प्रकाशन और मुद्रणके लिये सामाजिक संस्थाएँ आगे आयें । सही अर्थोंमें यदि ये सामाजिक संस्थाएँ राष्ट्र-निर्माण तथा बौद्धिक-क्रान्ति करना चाहती हों तो उन्हें इन व्यवस्थाओंको अपने हाथमें लेना चाहिये । रेडियो और टेलीविजनकी दशा देखते हुए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जो भी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संगठन विचारोंके क्षेत्रमें क्रान्ति लाना चाहते हैं उनका यह दायित्व है कि देशमें पुस्तकालयों, वाचनालयों और प्रकाशन-मुद्रण-संस्थानोंका ऐसा जाल बुन दें कि कोई अच्छा विचार जनताके बीच घर-घरमें जानेसे रुके नहीं ।

विदेशोंने अपने-अपने प्रतिनिधियोंके माध्यमसे तथा वैसे भी अनेकानेक पुस्तकालयोंकी स्थापना हमारे देशमें की है और वे पोस्ट-आफिसके द्वारा मात्र एक ओरकी रजिस्ट्रीका व्यय लेकर पुस्तकें पढ़नेको भेजते हैं । हमारे देशमें अवश्य ही कुछ पुस्तकालय ख्यातिलब्ध हैं और उनमें अच्छी पुस्तकोंका संग्रह है, किंतु उनमें ऐसी व्यवस्था नहीं है । अपने देशमें सचल पुस्तकालयों और वाचनालयोंकी स्थापना और अधिक उपयोगी हो सकती है । ऐसे पुस्तकालयोंका लाभ घरपर बैठी रहनेवाली

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिक्षित अथवा अर्धशिक्षित महिलाएँ और बच्चे उठा सकते हैं। मुख्य तौरसे उनके लिये उपयोगी और मनोरञ्जक साहित्यके माध्यमसे हम उनकी उचित सेवा शीघ्र और प्रभावी ढंगसे कर सकनेमें सक्षम होंगे। स्थान और पात्रोंकी आवश्यकताओंका ध्यान रखते हुए हम बाल-पुस्तकालयों, महिला-पुस्तकालयों अथवा प्रौढ-पुस्तकालयोंकी अलग-अलग व्यवस्था भी कर सकते हैं। सचल पुस्तकालयोंके माध्यमसे हम शीघ्र अलख जगा पानेमें समर्थ हो सकेंगे।

पुस्तकालयोंकी कमीके साथ-साथ हमारे देशवासियोंमें पढ़नेकी उतनी रुचि भी नहीं दिखायी पड़ती। पुस्तकें और समाचार-पत्र पढ़नेका अभ्यास तो देहाती क्षेत्रोंमें बिलकुल नहीं है, शहरोंमें अत्यल्प है। पाठकोंकी कमीके कारण जो अच्छी पुस्तकें प्रकाशित भी हैं, वे खरीदी नहीं जातीं। पुस्तकालयों और वाचनालयोंकी स्थापनाके साथ-साथ पुस्तकोंकी देख-रेख करनेवालोंको जन-जनमें पुस्तकें और समाचार-पत्रोंको पढ़नेकी प्रेरणा भी देनी होगी।

प्राचीनकालकी शिक्षा-प्रणाली अपने पुरातन स्वरूपमें स्थापित होना सम्भव नहीं है, किंतु हमें उसकी कमीको पूरा करनेके लिये तथा वर्तमान शिक्षा-पद्धतिको अधिक उपयोगी बनानेके लिये पुस्तकालय, वाचनालय-आन्दोलनको तीव्र गति देनेकी आवश्यकता है। शिक्षा-जगत्में ही नहीं विप्रोचित सेवाके रूपमें क्रान्ति करनेके लिये जिस विचारकी, जिस प्रकारकी चिन्तन-धाराकी आवश्यकता है उसकी पूर्ति तबतक सम्भव नहीं है जबतक पुस्तकालयों, वाचनालयों और प्रकाशन-संस्थानोंके माध्यमसे सेवाका व्रत प्रत्येक सक्षम व्यक्ति नहीं लेता और सभी सेवामूलक संस्थाएँ इस अभियानको अपना एक निर्धारित कार्यक्रम नहीं बना लेतीं। इस माध्यमसे किया गया कार्य सबसे बड़ी सेवा है, इसके लिये किया गया त्याग सबसे बड़ा त्याग है। विद्यादानका इससे उत्कृष्ट रूप और कुछ नहीं हो सकता।

साधकोंके लिये शिक्षा

(श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

काल बलवान् है, उसके सभी खिलौने हैं। इस विषम परिस्थितिको भी काल खा जायगा। भगवान्की शरणागति समस्त आपत्तियोंको दूर करती है। भगवन्नाम-जपमें सभी सिद्धियाँ हैं, परंतु मनुष्य धैर्यपूर्वक इस साधनका सेवन नहीं करता। समर्थ स्वामी रामदासजीका जप 'श्रीराम जय राम जय जय राम' था। वे प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान करके जलाशयमें खड़े रहकर सायंकाल चार बजेतक इस मन्त्रका जप करते थे। इस प्रकार उन्होंने चौदह वर्षतक जप किया। विद्यारण्य स्वामीने गायत्री-मन्त्रके चौबीस लाखके चौबीस पुरश्चरण किये। इन दोनों महापुरुषोंकी जप-सिद्धि जगत्प्रसिद्ध है। अतः ईश्वरके नामका जप करनेवाले साधकको धैर्य रखकर प्रतिदिन सतत जप करते रहना चाहिये। प्रतिदिन सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिये कि हमारा कितना समय उद्यम अथवा ईश्वर-स्मरणके बिना व्यतीत होता है। फल-प्राप्तिकी शीघ्रता न करके सतत जप करना चाहिये। शिथिलता, प्रमाद, मोह, क्रोध, आलस्य तथा निद्रा पापके फल हैं। जपके समय ये उपस्थित होते हैं। ये सब लेनदार हैं और अपना लेखा-ऋण वसूल करनेके लिये आते हैं। अतः उस समय बहुत उत्साहपूर्वक ईश्वर-स्मरण करना चाहिये, जिससे ये सब भाग जायँ। ईश्वर-स्मरणके अन्तराय ईश्वर-स्मरणसे ही नष्ट होते हैं।

ईश्वर-स्मरणका फल बहुत अधिक है, परंतु उसे हमारे काम, क्रोध और लोभ मार्गमें ही खा जाते हैं। इसलिये ईश्वर-स्मरण करनेवाले साधकको सहज-प्राप्त भोग-पदार्थोंके अतिरिक्त अन्यकी इच्छा नहीं करनी चाहिये तथा प्राप्त पदार्थोंका भी दवाकी तरह उनसे छूटनेके लिये सेवन करना चाहिये। उनमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। साधकको क्रोध नहीं करना चाहिये। क्रोध बड़े-बड़े तपस्वियोंके तपको क्षणमात्रमें खा जाता है। शरीरमें

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहनेवाला क्रोधरूपी राक्षस ही हमारा मांस और रक्त चूसता है । इतना ही नहीं, वह विवेक-शक्तिको नष्ट करके मोह उत्पन्न करता है । काम और क्रोधने ही अधिकांश साधकोंको परमार्थपथसे विचलित किया है । क्रोध शान्त करनेका उपाय मौन है । सांसारिक पदार्थोंसे अन्तःकरणकी वृत्तिको हटाकर परमात्मामें एकाग्र करनेका नाम ही योग है और इसकी सिद्धि ईश्वर-स्मरण, अभ्यास और वैराग्यसे होती है । भगवन्नामका जप ही अभ्यास है तथा सांसारिक पदार्थोंसे धीरे-धीरे उपरामता ही वैराग्य है । जगत्में तीन वस्तुएँ हैं—आत्मा, परमात्मा और अनात्मा । इनमें आत्मा अर्थात् हम स्वयं हैं और अनात्मा अर्थात् सांसारिक पदार्थ हैं । हम अज्ञानवश ऐसा मानते हैं कि इन अनात्म (जड)-पदार्थोंसे हम सुखी हो जायँगे । जगत्के पदार्थ अनुकूल होकर सुख देंगे—ऐसी आशा ही नहीं रखनी चाहिये; क्योंकि यह संसार नाशवान् है, स्थिर नहीं है । नाशवान् वस्तुसे सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है । नाशवान् होनेके साथ-साथ वे चञ्चल और परिणामी हैं, भिन्न-भिन्न स्वभावके हैं और उनका स्वभाव-परिवर्तन हो सकता नहीं । इसलिये ये सब पदार्थ हमारे इच्छानुसार होकर हमें सुखी कर देंगे—ऐसी आशा ही व्यर्थ है ।

संसार और हमारे मध्य साम्यता नहीं है । हम नित्य हैं, संसार अनित्य है । हम चेतन हैं, वह जड है । समान गुणवालेके साथ सम्बन्ध सुखद होता है । हमारी साम्यता परमात्माके साथ है । अतः सांसारिक पदार्थोंकी ओरसे अपनी रुचि हटाकर परमात्माकी ओर लगानी चाहिये । अन्तमें परमात्माकी प्राप्ति अवश्य होगी । काम, क्रोध और लोभका नाश भी भगवन्नाम-जपसे होता है । इसलिये यदि किसी साधकने निश्चय किया हो कि इतनी माला जपनी है तो उसे शिथिलता न लाकर उत्साह ही रखना चाहिये । ऐसा करनेसे काम-क्रोध और लोभ काल पाकर अवश्य नष्ट हो जाते हैं । इसमें समय अवश्य लगता है । वास्तविकता यह है कि जब काम, क्रोध और लोभ मनुष्यका पराभव करते हैं, तब साधककी रुचि ईश्वर-स्मरणमें पहलेसे ही कम हो जाती है और स्मरण कम होता है । यदि स्मरण कम न हो और दिन-पर-दिन बढ़ता रहे तो काम, क्रोध और लोभ समूल नष्ट हो जाते हैं ।

अन्तःकरणकी वृत्तिके दो भोक्ता हैं—एक ओर तो काम, क्रोध और लोभ हैं तथा दूसरी ओर ईश्वर-स्मरण है । इसलिये सतत ईश्वर-स्मरण हो तो काम, क्रोध और लोभ किधरसे आयेंगे । यदि वे पहलेसे उपस्थित हों तो भगवत्स्मरणसे उस स्थानको भरकर इन्हें निकालना चाहिये । अन्तःकरण एक कुरुक्षेत्र है । इसमें कौरवोंका बल बहुत अधिक है, परंतु दूसरी ओर श्रद्धा, भक्ति और विवेकयुक्त सतत अभ्यासी मनुष्य समय पाकर एक-न-एक दिन कौरवोंको पराजित करके परमात्माको प्राप्त कर लेता है । इस जन्ममें अथवा लाखों जन्मोंमें भी ईश्वरको प्राप्त किये बिना हमें इस संसारसे सुख मिलनेवाला नहीं है । इसलिये आजसे ही श्रद्धापूर्वक भगवन्नाम-जपमें लग जाना चाहिये और परमात्माको प्राप्त करनेके लिये लगन बढ़ानी चाहिये ।

गुरुगृहमें छात्रोंको दी जानेवाली शिक्षा

[तैत्तिरीयोपनिषद्की शीक्षावल्लीपर आधारित]

(पं० श्रीअम्बालालजी जानी, बी० ए०)

वर्तमान समयमें बाल्यावस्थासे ही छात्रोंको विद्याध्ययनके साथ-साथ धर्म, नीति, संयम-नियम तथा सच्चरित्रताका उपदेश न देनेवाली अपनी शिक्षा-पद्धति होनेके कारण अनेक प्रकारके अनिष्ट तथा अनर्थोत्पादक परिणाम दिन-प्रति-दिन दिखलायी दे रहे हैं तथा छात्र जिस प्रकार नीति-विमुख और चरित्रहीन होते जा रहे हैं, इसका कटु अनुभव विचारवान् पुरुषोंको हो रहा है ।

प्राचीन कालमें शिक्षाके आधारस्वरूप धर्म, नीति, संयम-नियम तथा सच्चरित्रताका उपदेश गुरुगृहमें छात्रोंको दिया जाता था और वे उसे व्यवहारमें भी लाते थे ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका परिणाम यह होता था कि आर्यलोगोंका गृहस्थाश्रम और संसार सुन्दर तथा आनन्दमय होता था एवं वे तेजस्वी, वर्चस्वी और परोपकारी होते थे, साथ ही दूसरे लोगोंके लिये आदर्शस्वरूप होते थे। कारण यह था कि उन दिनों बाल्यावस्थामें ही द्विज विद्यार्थी विद्योपार्जनके लिये गुरुगृहमें जाते थे तथा वहाँके निर्मल वातावरणमें पढ़ते थे। इसी प्रकार गुरु भी ऐसे निःस्पृही और समदर्शी होते थे कि सभी विद्यार्थियोंके प्रति, चाहे वे राजवंशके हों अथवा दीनकुलके, एक समान निर्मल स्नेहभाव तथा पितृवत् वात्सल्यभाव रखते हुए उन्हें धर्म तथा नीतिके अनुसार विद्यादान देते थे और उनके साथ पुत्रवत् व्यवहार करते थे। जिससे वे सच्चरित्र हों—इसपर गुरुदेव विशेष ध्यान रखते थे।

उस समय विद्या एवं कलाका महत्त्व तो था ही, साथ ही संयम-नियम, विनय-विवेक, स्वार्थत्याग आदि भी आवश्यक समझे जाते थे। **'विद्या ददाति विनयम्'**—विद्या विनयसे संयुक्त करती है। जो विनय-विवेक-सम्पन्न ब्रह्मवेत्ता हैं, वे सर्वत्र परम वन्दनीय और पूज्य मानकर सम्मानित होते हैं। गुरुगृहमें विद्यार्थी इन सारे शिक्षण-आचरणोंको सादर अङ्गीकार करते थे।

द्विज विद्यार्थी दस-बारह वर्षतक गुरुगृहमें रहकर ब्रह्मचर्यव्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करते, गुरुजीकी छोटी-बड़ी सेवाओंको एकनिष्ठासे अभिमान छोड़कर करते, परस्पर भेद-भाव छोड़कर स्नेह और सेवावृत्ति सीखते तथा उद्यमी, परिश्रमी और परोपकारी बनते थे। इतना ही नहीं, अपितु मानव-जीवनको उच्च रीतिसे लोक-कल्याणार्थ व्यतीत करनेकी भावना और शक्तिसे सम्पन्न होते थे। सारांश यह है कि वे वेदविद्या, अध्यात्मविद्या, तत्त्वज्ञान आदि सद्विद्याओं तथा सदाचारसे सम्पन्न होकर एवं समस्त गुणों और शुभ लक्षणोंसे युक्त होकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके लिये गुरुगृहसे अपने घर लौटते थे। परिणाम यह होता था कि उनका समाज और सांसारिक व्यवहार सुखमय तथा सत्कृत्योंसे युक्त होता था। उनका गृहस्थाश्रम जैसा लोकहितकर होता था, वैसा ही श्रेयस्कर भी सिद्ध होता था।

उनके इस प्रकार सच्चरित्र हो सकनेका कारण ऊपर बतलाया गया है। यही बात थी कि गुरुगृहमें तैत्तिरीय-उपनिषद्में कहे गये उत्तम शिक्षा-वचन उनके हृदयमें निरन्तर गूँजते रहते, उनके जीवनमें मनःकामनाओंका निर्माण करते, उन्हें जीवन देते तथा उन्हें व्यवहारमें लानेकी शक्ति प्रदान करते थे। वर्तमान समयमें इस प्रकारकी शिक्षा और प्रेरणाका अभाव हमारे आर्यजीवनको नष्ट कर रहा है। वे अमूल्य शिक्षा-वचन प्रत्येक आर्य-बालकके लिये मनन करने तथा आचरणमें लाने योग्य होनेके कारण यहाँ दिये जा रहे हैं—

स्नातकके कर्तव्य

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।

सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकँ सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः।

अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः।

एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवं चैतदुपास्यम्।

'आचार्य शिष्यको वेदकी शिक्षा देनेके पश्चात्

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निम्नलिखित अनुकरणीय शिक्षा देते थे—शिष्य! सत्य (प्रामाणिक बात) बोलना। उसी प्रकार धर्मका (अवश्य करने योग्य कर्तव्योंका) आचरण करना। (किये हुए) वेदके अध्ययनमें (स्वाध्यायमें) प्रमाद न करना (अर्थात् तुझे निरन्तर वेदादिका पाठ करना ही चाहिये)। (विद्या ग्रहण करनेके बाद) गुरुको प्रिय—अभीष्ट धन गुरु-दक्षिणामें देना। (ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण होनेपर अपने योग्य कन्याके साथ विवाह करके गृहस्थाश्रमका निर्वाह करना तथा) संतानपरम्पराका उच्छेद करनेकी बात मत सोचना (और न करना) अर्थात् योग्य संतान उत्पन्न करना।

'सत्यसे प्रमाद न करना (सत्यका कभी त्याग न करना)। धर्म—कर्तव्य-कर्मके प्रति कभी प्रमादका आश्रय न लेना। कुशल—अपनी रक्षा तथा जीविकोपार्जनके कर्मोंमें प्रमाद न करना। समृद्धि (जो ऐश्वर्य प्राप्त हुआ हो उसकी वृद्धि करनेवाले कर्मों) की ओर कभी प्रमाद न करना। अपने अध्ययनको बनाये रखने तथा दूसरोंको उपदेश देनेमें—वेदादि शास्त्रोंके अध्यापनमें कभी प्रमाद न करना।

'देवताओं तथा पितरोंके उद्देश्यसे किये जानेवाले कर्तव्य कर्मोंका कभी त्याग न करना। माताकी देवताके रूपमें उपासना करना। पिताकी देवरूपमें उपासना करना। आचार्यकी देवरूपमें उपासना करना। अतिथिकी देवरूपमें उपासना करना। जो-जो कार्य अनिन्दित हैं, उन-उन कार्योंको करते रहना, परंतु इससे भिन्न जो कर्म हों (जो निन्दित हों और शिष्टजन कदाचित् उन्हें करते भी हों तो भी) उनका अनुष्ठान न करना, ऐसे कर्म तू कभी न करना। हमारे अर्थात् गुरुके जो श्रेष्ठ आचरण हों, उन्हींका तुझे अनुसरण-आचरण करना चाहिये, परंतु जो उनसे अतिरिक्त विपरीत आचरणके कर्म हों, उन्हें कभी न करना।

'जो ब्राह्मण अपनेसे श्रेष्ठ हों, उन्हें अपना आसन देने (सत्कार करने) में विलम्ब न करना। जो कुछ भी तू दानरूपमें देना, उसे श्रद्धायुक्त होकर देना। अश्रद्धासे किसी भी प्रकारका दान करना उचित नहीं। यथाशक्ति अपनी सम्पत्तिके अनुसार ही तू दान करना। लोकलज्जासे भी तुझे अवश्य दान करना चाहिये। शास्त्रके भयसे भी तुझे दान करना चाहिये। विवेकपूर्वक (मित्रादिके कार्योंमें) दान करना चाहिये।

'यदि तुझे अपने किसी भी प्रकारके कर्म अथवा लौकिक आचारके सम्बन्धमें शङ्का उठे तो अपने समीप रहनेवाले ब्राह्मण जो विचारशील, वेद-विहित कर्ममें कुशल, सब प्रकारसे स्वतन्त्र, क्रोधरहित अर्थात् शान्त स्वभाववाले तथा धर्मकी कामनावाले हों, वे इन कर्मोंके सम्बन्धमें जिस प्रकारका व्यवहार करते हों, तुझे भी संशयरहित होकर उसी प्रकारका आचरण करना चाहिये।

'(अब निन्दित पुरुषोंके प्रति कैसा बर्ताव करना चाहिये, वह भी सुन।) जो ब्राह्मण पूर्ण विचारशील हों, वेदविहित कर्मोंमें कुशल हों, सब प्रकारसे स्वतन्त्र हों, क्रोधरहित अर्थात् शान्त स्वभाववाले हों तथा धर्मकी कामनावाले हों, वे जिस प्रकार निन्दित पुरुषोंके प्रति बर्ताव करते हों, तुझे भी उन निन्दित पुरुषोंके प्रति वैसा ही बर्ताव करना चाहिये। यह एक विधेय है। सब वेदोंका यही एक रहस्य है, यह ईश्वरीय आनुशासनिक वचन है। इसी रीतिसे तुझे सबके प्रति व्यवहार करना चाहिये।'

भारतीय संस्कृतिके शिक्षोपयोगी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

शिक्षाका प्राचीन साहित्य नितान्त विस्तीर्ण है। इसके ग्रन्थोंका बहुत बड़ा भाग विधर्मी आक्रमणकारियोंद्वारा नष्ट कर दिया गया। अब भी जो शेष रह गया है, उसमें सहस्रों ग्रन्थ ऐसे लोगोंके घरोंमें पड़े हैं, जिनका पता औरोंको नहीं है। यह सब कुछ होनेपर भी यदि शिक्षोपयोगी प्रकाशित तथा उपलब्ध केवल संस्कृत-ग्रन्थोंकी ही पूरी सूची एन० सी० सी०* के अनुसार दी जाय तो भी एक विशाल ग्रन्थ हो जायगा। इसलिये बहुत

*एन० सी० सी० ३० जिल्दोंमें प्रकाश्यमान है। उसमें केवल संस्कृत-ग्रन्थ ही सूचित हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संक्षिप्तरूपमें ऐसे कुछ मुख्य ग्रन्थोंकी नामावली ही यहाँ दी जा रही है।

भारतीय शिक्षा-ग्रन्थोंके मुख्य भाग आठ हैं—१. वेद, २. वेदाङ्ग, ३. उपवेद ४. इतिहास और पुराण, ५. स्मृति, ६. दर्शन, ७. निबन्ध और ८. आगम।

वेद

वेदके छः भाग हैं—१. मन्त्रसंहिता, २. ब्राह्मण-ग्रन्थ, ३. आरण्यक, ४. सूत्रग्रन्थ, ५. प्रातिशाख्य और ६. अनुक्रमणी। मूलतः वेद एक ही था, किंतु भगवान् व्यासद्वारा उसके तीन भाग हो गये—

स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी।

(अमरकोश १।६।३)

बादमें ये चार हो गये—१. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद और ४. अथर्ववेद। वेदका विभाजन करनेके कारण ही महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास कहे जाते हैं।

वेद अनादि एवं अपौरुषेय कहे गये हैं। उनका कोई निर्माता नहीं है। वे शाश्वत ईश्वरीय वाणी हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें इन्हें भगवान्ने ब्रह्माके हृदयमें प्रकट किया। गुरुमुखसे सुनकर ही वैदिक मन्त्रोंकी प्रतिष्ठा होती है, इसलिये वेद-मन्त्रोंको श्रुति तथा उपश्रव भी कहा जाता है।

वेदोंके मन्त्र या संहिता भाग

प्रत्येक मन्त्रोंके छन्द, ऋषि, देवता तथा विनियोग निर्दिष्ट किये गये हैं। मन्त्रोच्चारणका ज्ञान छन्दद्वारा होता है। उनकी पूरी व्याख्या निरुक्त या व्याकरणसे नहीं होती। समाधिमें जिसने जिस मन्त्रका अर्थ-दर्शन किया, वह उस मन्त्रका ऋषि कहा गया। ऋषि मन्त्रद्रष्टा होते थे।

वेदके प्रत्येक मन्त्रकी आनुपूर्वी शाश्वत है। मन्त्रोंके शब्दोंमें परिवर्तन सम्भव नहीं। मन्त्रोंका संकलन-क्रम परिवर्तित हो सकता था। इसलिये वेदपाठकी अनेक प्रणालियाँ हुईं। इन्हें क्रम, घन, जटा, शिखा, रेखा, माला, ध्वज, दण्ड और रथ कहा जाता है। मीमांसा-दर्शन एवं चरणव्यूहमें इन विषयोंपर विस्तृत विचार है।

शाखाएँ

ऋषियोंने अपने शिष्योंको अपने सुविधानुसार मन्त्रोंकी शिक्षा दी, जिससे सम्पादन-क्रममें एक वेदकी अनेक शाखाएँ हो गयीं।

ऋग्वेदकी २१ शाखाएँ मानी गयी हैं। भागवतादि पुराणों एवं चरणव्यूहोंमें पूरी सूची है। उनमेंसे शाकलशाखा शुद्धरूपमें प्राप्त है। यजुर्वेदके दो प्रकारके पाठ मिलते हैं। एकको शुक्लयजुर्वेद तथा दूसरेको कृष्णयजुर्वेद कहा जाता है। शुक्लयजुर्वेदकी १५ तथा कृष्णयजुर्वेदकी ८६ शाखाएँ थीं। इनमेंसे शुक्लयजुर्वेदकी काण्व तथा माध्यन्दिनी शाखाएँ उपलब्ध हैं। कृष्णयजुर्वेदकी तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ, कापिष्ठल और श्वेताश्वतर—ये पाँच शाखाएँ मिलती हैं। सामवेदकी एक सहस्र शाखाओंका उल्लेख मिलता है, परंतु उनमें केवल तीन प्राप्त हैं—(१) कौथुमी, (२) जैमिनीया और (३) राणायनीया। उनमें भी कौथुमी तथा जैमिनीया शाखा ही पूर्णरूपमें मिलती हैं। राणायनीयाका कुछ ही अंश प्राप्त है। अथर्ववेदकी ९९ शाखाओंमेंसे अब पैप्पलादी तथा शौनकीयादर्प शाखाएँ शुद्धरूपमें मिलती हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थ

इन ग्रन्थोंमें वैदिक मन्त्रोंकी उपयोगविधि दर्शायी गयी है। इस समय जो ब्राह्मण उपलब्ध हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—ऋग्वेदके—(१) ऐतरेय-ब्राह्मण और (२) शाङ्खायन-ब्राह्मण (अथवा कौषीतकि-ब्राह्मण)। कृष्णयजुर्वेदके—तैत्तिरीय-ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय-संहिताका मध्यवर्ती ब्राह्मण। शुक्लयजुर्वेदका—शतपथ-ब्राह्मण (यह भी दो प्रकारका है—(१) काण्वशाखावाला १७ काण्डोंका तथा (२) माध्यन्दिन शाखावाला१४ काण्डोंका)। सामवेदके—१० ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं—(१) ताण्ड (पंचविंश)-ब्राह्मण, (२) षड्विंश-ब्राह्मण, (३) सामविधान-ब्राह्मण, (४) आर्षेय-ब्राह्मण, (५) मन्त्र-ब्राह्मण, (६) दैवताध्याय-ब्राह्मण, (७) वंश-ब्राह्मण, (८) संहितोपनिषद्-ब्राह्मण, (९) जैमिनीय-ब्राह्मण और (१०) जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण। अथर्ववेदका—गोपथ-ब्राह्मण।

आरण्यक और उपनिषद्

ब्राह्मण-ग्रन्थोंके जो भाग वनमें पठनीय थे, उनका नाम आरण्यक हुआ। इस समय प्राप्त उपनिषदोंकी संख्या

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लगभग २७५ है । उनमें तेरह उपनिषदें मुख्य मानी जाती हैं, जिनपर शंकर आदि आचार्योंने भाष्य लिखे हैं । उनके नाम ये हैं—

(१) ईश, (२) केन, (३) कठ, (४) प्रश्न, (५) मुण्डक, (६) माण्डूक्य, (७) ऐतरेय, (८) तैत्तिरीय, (९) छान्दोग्य, (१०) बृहदारण्यक, (११) श्वेताश्वतर, (१२) कौषीतकि और (१३) नृसिंहतापिनी । इनमेंसे ईशावास्योपनिषद् यजुर्वेदकी मूल संहितामें ही है ।

श्रौतसूत्र या कल्पसूत्र

वेदोंमें सूत्रभाग चार प्रकारके हैं—(१) श्रौतसूत्र, (२) स्मार्तसूत्र, (३) गृह्यसूत्र और (४) धर्मसूत्र । श्रौतसूत्रोंको कल्पसूत्र भी कहा जाता है । श्रौतसूत्रोंमें मन्त्रसंहिता-श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं—ऋग्वेदके—(१) आश्वलायन श्रौतसूत्र और (२) शाङ्ख्यायन श्रौतसूत्र । कृष्णयजुर्वेदके—(१) आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र, (२) हिरण्यकेशीय (सत्याषाढ़)-श्रौतसूत्र, (३) बौधायन-श्रौतसूत्र, (४) भारद्वाज-श्रौतसूत्र, (५) वैखानस-श्रौतसूत्र, (६) वाधूल-श्रौतसूत्र, (७) मानव-श्रौतसूत्र और (८) वाराह-श्रौतसूत्र । शुक्लयजुर्वेदका—कात्यायन (या परस्कर)-श्रौतसूत्र । सामवेदके—(१) मशक-श्रौतसूत्र, (२) लाट्यायन-श्रौतसूत्र, (३) द्राह्यायण-श्रौतसूत्र और (४) खादिर-श्रौतसूत्र । अथर्ववेदका—(१) वैतान-श्रौतसूत्र एवं (२) कौशिक-श्रौतसूत्र ।

गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र

जिस प्रकार चारों वेदोंके श्रौतसूत्र हैं, वैसे ही गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र भी हैं । आपस्तम्ब-शाखाके चारों प्रकारके सूत्र उपलब्ध हैं ।

धर्मसूत्र एक प्रकारसे मनु और याज्ञवल्क्यके सदृश धर्मशास्त्र ही है और गृह्यसूत्र १६ संस्कारोंसहित पाकयज्ञ-संस्थाके विधानोंके प्रतिपादक हैं । आश्वलायन-गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब-गृह्यसूत्र, पारस्कर-गृह्यसूत्र, जैमिनीय-गृह्यसूत्र तथा कौशिक-गृह्यसूत्र विशेष महत्त्वके हैं ।

प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्य एक प्रकारके वैदिक व्याकरण हैं, जिनमें शिक्षा और स्वर-विधानपर विशेष बल दिया गया है । ये चारों ही वेदोंमें उपलब्ध हैं । यजुर्वेदके शुल्ब-सूत्रोंमें कात्यायन-शुल्बसूत्र प्रधान है । इसमें ज्यामिति-शास्त्रका विस्तार है । भौतिक विज्ञानका वर्णन करनेवाले इन शुल्बसूत्रोंके लोप हो जानेसे वैदिक भौतिक विज्ञान लुप्त हो गया ।

अनुक्रमणी

वेदोंकी रक्षा तथा वेदार्थका विवेचन इन ग्रन्थोंका प्रयोजन है । ऋग्वेदकी—(१) आर्षानुक्रमणी—इसमें मन्त्र-क्रमसे ऋषियोंके नाम हैं, (२) छन्दोऽनुक्रमणी, (३) देवतानुक्रमणी, (४) अनुवाकानुक्रमणी, (५) सर्वानुक्रमणी, (६) बृहद्देवता, (७) ऋग्विधान, (८) बह्वृच्परिशिष्ट, (९) शाङ्खायन-परिशिष्ट, (१०) आश्वलायन-परिशिष्ट तथा (११) ऋक्प्रातिशाख्य प्राप्त हैं । कृष्णयजुर्वेदकी—(१) आत्रेयानुक्रमणी, (२) चारायणीयानुक्रमणी और (३) तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य प्राप्त हैं । शुक्लयजुर्वेदके—(१) प्रातिशाख्य-सूत्र, (२) कात्यायनानुक्रमणी उपलब्ध हैं ।

वेदाङ्ग

वेदके छः अङ्ग माने जाते हैं । इन अङ्गोंके अध्ययनके बिना वैदिक ज्ञान अपूर्ण रहता है । वेदरूपी ज्ञान-पुरुषका (१) नेत्र है ज्योतिष, (२) कर्ण है निरुक्त, (३) नासिका है शिक्षा, (४) मुख है व्याकरण, (५) हाथ है कल्प और (६) पैर है छन्द ।

शिक्षा

शिक्षामें मन्त्रके स्वर, अक्षर, मात्रा तथा उच्चारणका विवेचन होता है । इस समय प्रायः निम्नलिखित शिक्षा-ग्रन्थ उपलब्ध हैं—ऋग्वेदकी—पाणिनीय शिक्षा । कृष्णयजुर्वेदकी—व्यास-शिक्षा । शुक्लयजुर्वेदकी—याज्ञवल्क्य आदि २५ शिक्षाग्रन्थ । सामवेदकी—गौतमी, लोमशी और नारदीय शिक्षा । अथर्ववेदकी—माण्डूकी शिक्षा ।

व्याकरण

व्याकरणका काम भाषाका नियम स्थिर करना है । शाकटायन व्याकरणके सूत्र तथा आजका पाणिनीय व्याकरण यजुर्वेदसे सम्बद्ध प्रतीत होते हैं । पहले शाकटायनादिके भी बहुत-से व्याकरण-ग्रन्थ थे, जिनके सूत्र पाणिनीय व्याकरण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रन्थमें हैं । पाणिनीय व्याकरणपर कात्यायन ऋषिका वार्तिक और महर्षि पतञ्जलिका महाभाष्य है । इसके पश्चात् इसपर व्याख्या, टीका तथा विवेचनात्मक ग्रन्थोंकी रचना तो बहुत बड़ी संख्यामें है । इनके अतिरिक्त सारस्वत-व्याकरण, कामधेनु-व्याकरण, हेमचन्द्र-व्याकरण आदि बहुत-से व्याकरण-शास्त्रके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं । इन सबपर भी भाष्य, टीका और विवेचन हैं ।

निरुक्त

जिस प्रकार पाणिनीय व्याकरणके प्रचारसे अन्य प्राचीन व्याकरण लुप्त हो गये, वैसे ही अधिकांश निरुक्त-ग्रन्थ भी लुप्त हो गये । निरुक्त वेदोंकी व्याख्या-पद्धति बतलाते हैं । इन्हें वैदिक कोष कहना चाहिये । अब केवल यास्काचार्यका निरुक्त मिलता है । इसपर बहुत-से भाष्य, टीकादि ग्रन्थ हैं । इसी प्रकार कश्यप, शाकपूणि आदिके निरुक्त-ग्रन्थोंका पता चलता है । इन्हींकी परम्परामें बादमें अमर, हलायुध, विश्व-प्रकाश तथा मेदिनी आदि कोश रचे गये ।

छन्द

इस समय वैदिक छन्दोंके निर्देशक मुख्यतः इतने ग्रन्थ उपलब्ध हैं—गार्ग्यप्रोक्त उपनिदानसूत्र (सामवेदीय), पिङ्गलनागप्रोक्त छन्दःसूत्र (छन्दोविचिति), वेङ्कटमाधवसूत्र, छन्दोऽनुक्रमणी और जयदेवका छन्दःसूत्र । लौकिक छन्दपर भी छन्दःशास्त्र (हलायुधवृत्ति), छन्दोमञ्जरी, वृत्तरत्नाकर, श्रुतबोध, ज्ञानाश्रयी छन्दोविचिति आदि अनेक ग्रन्थ हैं ।

कल्प और ज्योतिष

कल्पसूत्रोंमें यज्ञोंकी विधिका वर्णन है । ज्योतिषका मुख्य प्रयोजन संस्कार तथा यज्ञोंके लिये मुहूर्त बतलाना और यज्ञस्थली, मण्डपादिका माप बतलाना आदि है । व्याकरणके समान ज्योतिष-शास्त्र भी व्यापक है । इस समय लगधाचार्यके वेदाङ्गज्योतिषके अतिरिक्त सामान्य ज्योतिषके बहुत-से ग्रन्थ हैं । नारद, पराशर, वसिष्ठ आदि ऋषियोंके बड़े-बड़े ग्रन्थोंके अतिरिक्त वराहमिहिर, आर्यभट्ट, ब्राह्मभट्ट और भास्कराचार्यके ज्योतिषके ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं ।

उपवेद

प्रत्येक वेदका एक उपवेद होता है । जैसे ऋग्वेदका अर्थवेद, यजुर्वेदका धनुर्वेद, सामवेदका गान्धर्ववेद और अथर्ववेदका आयुर्वेद है ।

पुराणेतिहास

'**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्** । वेदार्थका पूरा विवेचन इतिहास-पुराणमें ही हुआ है । अतएव इतिहास-पुराणका विचार किये बिना वेदोंका ठीक-ठीक अर्थ जाना नहीं जा सकता । इसीलिये इतिहास-पुराणको वेदका उपाङ्ग कहा गया है । महर्षि वाल्मीकिका वाल्मीकीय रामायण और भगवान् वेदव्यासका महाभारत—ये दो मुख्य इतिहास-ग्रन्थ हैं। हरिवंशपुराण महाभारतका परिशिष्ट होनेसे यह भी इतिहास ही माना जाता है। इनके अतिरिक्त अध्यात्म-रामायण, योगवासिष्ठ आदि इतिहासके बहुत-से ग्रन्थ हैं ।

पुराण

पुराण चार प्रकारके हैं—(१) महापुराण, (२) पुराण, (३) अतिपुराण और (४) उपपुराण । इनमेंसे प्रत्येककी संख्या अठारह बतायी जाती है । सर्वसाधारणमें महापुराणोंको ही पुराणके नामसे जाना जाता है । इन महापुराणोंके नाम निम्न हैं—

(१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णुपुराण, (४) शिवपुराण, (५) श्रीमद्भागवतपुराण, (६) नारदीय-पुराण, (७) मार्कण्डेयपुराण, (८) अग्निपुराण, (९) भविष्य-पुराण, (१०) ब्रह्मवैवर्तपुराण, (११) लिङ्गपुराण, (१२) वाराहपुराण, (१३) स्कन्दपुराण, (१४) वामनपुराण, (१५) कूर्मपुराण, (१६) मत्स्यपुराण, (१७) गरुडपुराण और (१८) ब्रह्माण्ड-पुराण । पुराणोंमें वेदोंके सभी पूर्वोक्त विषय विस्तारसे प्रतिपादित हैं ।

स्मृति

हिंदू-धर्म तथा हिंदू-समाजका मुख्य संचालन स्मृतियोंके द्वारा ही होता है । स्मृतियोंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका विवेचन है । इनमें वर्णव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, वर्णाश्रम-धर्म, विशेष अवसरोंके कर्म, प्रायश्चित्त, शासन-विधान, दण्ड-व्यवस्था तथा मोक्षके साधनोंका वर्णन है । इस समय प्रायः सौसे अधिक स्मृतियाँ उपलब्ध हैं। उनमेंसे यहाँ थोड़ी-सी ही मुख्य स्मृतियोंके नाम

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिये जा रहे हैं—मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, औशनस, आङ्गिरस, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, वाधूल, दक्ष, मार्कण्डेय, गौतम, शातातप, वसिष्ठ, प्रजापति आदि । इनमें भी मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य-स्मृति अधिक विख्यात हैं । कलियुगके लिये पराशर-स्मृति मुख्य मानी गयी है ।

दर्शन

'दृश्यते यथार्थतया वस्तु पदार्थज्ञानमिति दर्शनम्'के अनुसार 'तत्त्वज्ञानसाधक' शास्त्रोंका नाम दर्शन-शास्त्र है । सृष्टि तथा जीवके जन्म-मरणके कारण तथा गतिपर जो शास्त्र विचार करे, उसे दर्शन कहते हैं । मुख्य दर्शन छः है—१—वैशेषिक, २-सांख्य, ३-योग, ४-न्याय, ५-पूर्वमीमांसा और ६-उत्तरमीमांसा । इनमें प्रत्येकके कई भेद आचार्योंके मतोंके कारण हो गये हैं । इनमेंसे सांख्य और योग परस्पर मिलते हैं । सांख्यदर्शनके मूल-सूत्र ग्रन्थपर संदेह किया जाता है । उसकी 'कारिका' ही मुख्य है । पूर्व या जैमिनीमीमांसामें वेदमन्त्र एवं वेद-माहात्म्यपर विस्तृत विचार है । उसपर शंकरस्वामी एवं कुमारिलकी व्याख्याएँ हैं । उत्तरमीमांसादर्शन (ब्रह्मसूत्र) के भाष्यके रूपमें ही परवर्ती वैष्णवादि सम्प्रदाय बने हैं । इस प्रकार इनमें प्रत्येक दर्शनपर भाष्य, टीका एवं विवेचनके तो सहस्रों ग्रन्थ हैं ही । (इनमें उपनिषदर्थ विचार है, अतः इसे वेदान्तदर्शन कहते हैं । शांकरभाष्यपर लगातार प्रायः ३० टीकाएँ हैं ।) न्यायमें तर्क हैं । वैशेषिक भी उसीका अंश है । स्वतन्त्र ग्रन्थ भी कई सहस्र हैं ।

निबन्ध-ग्रन्थ

ये भी एक प्रकारके स्मृति-ग्रन्थ ही हैं । यद्यपि इनकी रचना मध्यकालमें हुई, फिर भी ये स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं हैं । स्मृतियों, पुराणोंमें जो धर्माचरणके निर्देश हैं, उनका ही इनमें प्रचुर विस्तारसे संकलन हुआ है । उनमें जो परस्पर विभिन्नता दीख पड़ती है या जो विषय स्पष्ट नहीं हैं, उनका स्पष्टीकरण तथा एकवाक्यता निबन्धकारोंने की है । विस्तारपूर्वक प्रमाण देकर प्रत्येक विषयका इनमें विवेचन है । इसलिये धर्मशास्त्रके विद्वान् इन्हें स्मृतियोंके समान मानते हैं । निबन्ध-ग्रन्थोंमें दायभाग, स्मृतितत्त्व, दानसागर, आचारादर्श, स्मृतिचन्द्रिका, कालमाधव, त्रिस्थलीसेतु, निर्णयसिन्धु, वीरमित्रोदय, कृत्यकल्पतरु तथा पुरुषार्थचिन्तामणि आदिका नाम सर्वोपरि है ।

भाषा, टीकाएँ तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थ

वैदिक ग्रन्थोंसे लेकर निबन्ध-ग्रन्थोंतकपर टीकाएँ हुई हैं । उनमें भाष्य हैं, टीकाएँ हैं, कारिकाग्रन्थ हैं, संक्षिप्त सारसंग्रह हैं । इन भाष्य-टीकाओंपर भी टीकाएँ हैं । इन भाष्य और टीकाओंका स्वतन्त्ररूपमें बहुत महत्त्व है । इनके कारण स्वतन्त्र सम्प्रदाय चले हैं ।

श्रीशंकराचार्यका अद्वैतवाद, श्रीरामानुजाचार्यका विशिष्टाद्वैतवाद, श्रीनिम्बार्काचार्यका द्वैताद्वैतवाद, श्रीवल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवाद तथा श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवाद और गौडीय-सम्प्रदायका अचिन्त्यभेदाभेदवाद सम्प्रदाय—सब भाष्योंपर ही अवलम्बित है । इनके अतिरिक्त भी शैव, शाक्त आदि सम्प्रदाय भी भाष्योंपर ही प्रतिष्ठित हैं । इन भाष्योंपर प्रतिष्ठित मतोंके आधारपर संस्कृत तथा हिंदीमें प्रत्येक सम्प्रदायोंमें सहस्रों ग्रन्थ लिखे गये हैं । इसी प्रकार न्याय, पूर्वमीमांसा आदि दर्शनोंके भी भाष्य हैं और उनके आधारपर उनके सम्प्रदाय हैं । उन सम्प्रदायोंमें भी सैकड़ों, सहस्रों ग्रन्थ हैं । हिंदू-धर्म बहुत विशाल धर्म है । उसकी शाखाएँ ही सैकड़ों हैं । जैनधर्म, बौद्धधर्म, सिक्खधर्म आदि हिंदूधर्मकी ही शाखाएँ हैं । इसी प्रकार कबीरपंथ, राधास्वामीमत, दादूपंथ, रामस्नेही, प्रणामी, चरणदासी आदि बहुत-से सम्प्रदाय हिंदू-धर्मके भीतर हैं । जैनधर्मके ग्रन्थोंकी संख्या सहस्रोंमें है । बौद्ध-धर्मके ग्रन्थ भी बड़ी संख्यामें हैं । सिक्ख, कबीरपंथी, दादूपंथी, राधास्वामी, रामस्नेही, प्रणामी आदि मतोंमें उनके गुरुओंके ग्रन्थ ही परम प्रमाण ग्रन्थ माने जाते हैं । उन सबकी संख्या भी बहुत बड़ी है । —क्रमशः

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
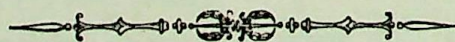
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः

श्रीरामानुजाचार्य

आचार्य श्रीरामानुजके प्राकट्यसे दक्षिण भारतका तिरुकुन्नर ग्राम पवित्र हुआ था । बहुत छोटी अवस्थामें इनके पिता श्रीकेशवभट्टजी परलोकवासी हो गये थे । आपने काञ्चीमें यादवप्रकाशजी आदिसे विद्याध्ययन किया ।

महापुरुष आलवन्दार (श्रीयामुनाचार्य) ने आचार्यको तब स्मरण किया, जब वे श्रीनारायणके नित्यधाम पधारने लगे । आचार्य श्रीरंगम् पहुँचे, किंतु इससे पूर्व ही उनका महाप्रस्थान हो चुका था । आचार्यने देखा कि आलवन्दारके हाथकी तीन अँगुलियाँ मुड़ी हुई हैं । उन्होंने संकेत समझ लिया और नम्रतासे सूचित किया—'मैं 'ब्रह्मसूत्र', 'विष्णुसहस्रनाम' और 'दिव्यप्रबन्धम्'की टीका अवश्य लिखूँगा या लिखवा दूँगा ।' ऐसा कहते ही महापुरुषके हाथकी अँगुलियाँ सीधी हो गयीं ।

आचार्यने श्रीयतिराजसे संन्यासकी दीक्षा ग्रहण की । तिरुकोट्टयूरके महात्मा नाम्बिने इन्हें अष्टाक्षर- **(ॐ नमो नारायणाय)** मन्त्रकी दीक्षा दी । गुरुने आदेश दिया—'यह परम गोप्य श्रीनारायण-मन्त्र है । अनधिकारीको इसका श्रवण नहीं करना चाहिये । इसके श्रवणमात्रसे अधम प्राणी भी वैकुण्ठके अधिकारी हो जाते हैं ।'

'सुनो, सुनो, सब लोग ध्यान देकर सुनो और स्मरण कर लो । भगवान् नारायणके इस मन्त्रके सुननेसे ही प्राणी वैकुण्ठका अधिकारी हो जाता है ।' आचार्य मन्दिरके शिखरपर खड़ा होकर भीड़का आह्वान करके उस परम गोप्य मन्त्रकी घोषणा कर रहे थे ।

'रामानुज ! तुमने यह क्या किया ? मेरी आज्ञा भंग करनेका फल तुम जानते हो ?' गुरुदेवने सुना तो वे बहुत अप्रसन्न हुए और बोले कि 'इस प्रकार कहीं मन्त्रघोषणा की जाती है ?'

'गुरुदेव ! आपकी आज्ञा भंग करके मैं नरक जाऊँगा, यही न ? किंतु बेचारे इतने प्राणी श्रीहरिके धाम पधारेंगे । मैं अकेला ही तो नरककी यातना भोगूँगा ?'—आचार्यने निवेदन किया ।

'आचार्य तो सचमुच तुम्हीं हो'—गुरुदेवने शिष्यको हृदयसे लगा लिया ।

× × ×

आचार्यकी कीर्तिके साथ उनके शत्रु भी बढ़ते जा रहे थे । शत्रुओंने अनेक बार उनके वधका प्रयत्न किया, उनके भोजनमें विष मिलाया गया, पर प्रभुने सदा उनकी रक्षा की । आचार्यने सम्पूर्ण भारतकी यात्रा की । श्रीमहालक्ष्मीद्वारा प्रवर्तित प्रपत्तिमार्गके अनुसार उन्होंने प्रस्थानत्रयीपर 'श्रीभाष्य' लिखा । आचार्यके प्रधान शिष्य कूरत्ताळवार (कूरेश) थे । कूरेशके दो पुत्र थे—पराशर और पिल्लन । आचार्यकी आज्ञासे पराशरने 'विष्णुसहस्रनाम' तथा पिल्लनने 'दिव्यप्रबन्धम्'की टीका लिखी । इस प्रकार आचार्यने श्रीयामुनाचार्यकी तीनों इच्छाएँ पूर्ण कीं ।

आचार्य श्रीरामानुजने जिस विशिष्टाद्वैत-मतका प्रचार किया, उसकी परम्परा पूर्वसे चली आ रही थी । द्वापरके अन्तसे उसमें 'आळवार' भक्तोंका क्रम मिलता है । सरोयोगी या पोयगै, भतत्त और पेय—इन तीन अत्यन्त प्राचीन आळवारोंका वर्णन मिलता है । ये क्रमशः काञ्ची, महाबलीपुर और मैलापुरमें हुए थे । इनके पश्चात् आचार्य तिरुमड़ियै (भक्तिसार) का प्रादुर्भाव हुआ और फिर पाण्ड्यदेशके तिरुक्कुरुकूर नगरमें शठकोप स्वामी (नम्माळवार) का । शठकोप स्वामीके प्रधान शिष्य मधुरकवि अत्यन्त प्रख्यात हैं । केरलप्रान्तमें कुलशेखर प्रसिद्ध आळवार हुए । विष्णुचित्तपेरि आळवार और उनकी पुत्री गोदा (आण्डाळ) की रचनाओंका तमिलमें अत्यन्त आदर है । श्रीयामुनाचार्यसे पूर्व द्रविड़ाचार्य, गुहदेव, टंक, श्रीवत्सांक प्रभृति वैष्णवाचार्योंके नाम मिलते हैं, जिन्होंने 'ब्रह्मसूत्र'पर भाष्य लिखे थे । विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदायकी

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परम्परा श्रीमहालक्ष्मीसे श्रीविष्वक्सेन, श्रीशठकोपस्वामी, श्रीनाथमुनि, श्रीपुण्डरीकाक्ष, श्रीराममिश्र स्वामी और श्रीयामुनाचार्य—इस क्रमसे एकसे दूसरेको प्राप्त हुई है ।

आचार्य श्रीरामानुजकी परम्परामें महान् दार्शनिक एवं प्रकाण्ड विद्वानोंका क्रम चलता ही आया है । श्रीदेवराजाचार्य, श्रीवरदाचार्य, श्रीसुदर्शनव्यास भट्टाचार्य, श्रीवीरराघवदासाचार्य, श्रीवादिहंसाम्बुजाचार्य, श्रीवेंकटनाथ वेदान्ताचार्य, श्रीमल्लोकाचार्य, आचार्य वरदगुरु, वरदनायक सूरि, अनन्ताचार्य, दोद्दय महाचार्य रामानुजदास, सुदर्शनगुरु तीनों श्रीनिवासाचार्य, बुच्चि वेंकटाचार्य, श्रीनिवास दीक्षित आदि आचार्योंने अपने ग्रन्थोंसे विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तको स्पष्ट एवं विस्तृत किया है । आचार्य बोधायन, आचार्य ब्रह्मनन्दी और द्रमिडाचार्यने विशिष्टाद्वैतके सिद्धान्त-ग्रन्थोंका बहुत बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण विस्तार किया है ।

श्रीरामानुजाचार्यने भारतमें शास्त्रीय आचार एवं भक्तिकी पुनः प्रतिष्ठा की । बौद्ध एवं कापालिक धर्मसे वैदिक धर्म क्षीणप्राय हो गया था । उस समय श्रीशंकराचार्यने सनातनधर्मको प्रतिष्ठित किया था तथा शास्त्रोंके प्रति श्रद्धा जाग्रत् कर दी थी, किंतु शास्त्रीय आचारकी ठीक प्रतिष्ठा होकर हिंदू-धर्मका पुनरुद्धार तो श्रीरामानुजाचार्य-द्वारा ही पूर्ण हुआ ।
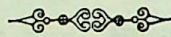
श्रीमध्वाचार्य

विक्रम-संवत् १२९५की माघशुक्ला सप्तमीको मद्रासके मंगलूर जिलेके उडूपी-क्षेत्रसे कुछ दूर वेललिग्राममें भार्गवगोत्रीय नारायणभट्टकी पत्नी माता वेदवतीकी गोद एक लोकोत्तर पुरुषके प्राकट्यसे धन्य हो गयी । पिताने बालकका नाम वासुदेव रखा । बचपनमें बालक वासुदेव खेलने-कूदनेमें अधिक रुचि रखते थे । वे वासुदेवके अवतार, सुपुष्ट-शरीर एवं अत्यन्त बलवान् थे । लोग उन्हें 'भीम' कहकर पुकारते थे । जब इन्हें पढ़नेकी रुचि हुई तो अल्पकालमें ही समस्त शास्त्र अनायास उपस्थित हो गये ।

बालक वासुदेव संन्यास लेनेको प्रस्तुत हुए । माता-पिताका मोह स्वाभाविक है, किंतु जन्मसिद्ध पुत्रके चमत्कारों एवं योगसिद्धिके प्रभावोंको देखकर माता-पिताको स्वीकृति देनी पड़ी । ग्यारह वर्षकी अवस्थामें वासुदेवने श्रीअच्युतपक्षाचार्यजीसे संन्यास लेकर पूर्णप्रज्ञ नाम धारण किया । इनका वास्तविक अध्ययन तो संन्यासके पश्चात् प्रारम्भ हुआ ।

कुछ दिनों पश्चात् आचार्यने भारतयात्रा की । उन्होंने स्थान-स्थानपर शास्त्रार्थ करके भक्तिमार्गकी स्थापना की । एक स्थानपर उन्होंने वेद, महाभारत और विष्णुसहस्रनामका क्रमशः तीन, दस और सौ अर्थ किया । गीताका भाष्य पूर्ण करके वे श्रीबद्रीनाथ-धाम पहुँचे । वहाँ भगवान् व्यासने इन्हें शालग्रामजीके तीन विग्रह देकर भक्तिकी स्थापनाका आदेश दिया ।

आचार्यने अनेक विग्रहोंकी स्थापना की । भगवान् व्यास-प्रदत्त शालग्राम-विग्रह सुब्रह्मण्य, उडूपी और मध्यतलमें पधराये गये । तुलुबके समीप जलमग्न जहाजमेंसे गोपीचन्दनसे ढकी श्रीकृष्णचन्द्रकी सुन्दर मूर्ति स्वप्नादेशके अनुसार निकलवाकर आचार्यने उडूपीमें स्थापित की । उडूपीमें आचार्यके बनवाये हुए आठ मन्दिर और हैं । तदनन्तर जब आचार्य परमधाम पधारने लगे, तब उन्होंने पद्मनाभतीर्थ (सोहनभट्ट) को श्रीरामजीकी मूर्ति एवं भगवान् व्यासप्रदत्त शालग्राम-विग्रह देकर द्वैतमतके प्रचारकी आज्ञा दी ।

श्रीपद्मनाभाचार्य, श्रीजयतीर्थाचार्य, आचार्य व्यासराज स्वामी, व्यास रामाचार्य, श्रीराघवेन्द्र स्वामी, आचार्य वेदेशतीर्थ और आचार्य श्रीनिवासतीर्थने अपने ग्रन्थों एवं टीकाओंके द्वारा श्रीमध्वाचार्यके द्वैत-सिद्धान्तको सुपुष्ट एवं प्रसारित किया है ।

आचार्य पूर्णप्रज्ञ (श्रीमध्वाचार्य) का सिद्धान्त

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शंकर-मतसे ठीक विपरीत-सा हो गया है । अद्वैतमतमें भगवान् शंकराचार्य परम उपासक थे, किंतु कालक्रमसे ब्रह्मात्मैक्यका अर्थ शुष्क बौद्धिक विलास हो गया । आचार तथा परलोक बालकोंकी कल्पना मान लिये गये । शास्त्रका विचित्र अर्थ होने लगा । आचार्य मध्वने जीवकी नित्य पृथक् सत्ताका प्रतिपादन किया । जीव अपने संचालक स्वामी परमात्माकी आराधना करके ही नित्य शान्ति एवं आनन्द प्राप्त कर सकता है । इस सिद्धान्तसे उपासना, शास्त्र, परलोक, कर्म आदि सबका पोषण हुआ ।

आचार्यके मतानुसार कर्मके अनुष्ठानसे ज्ञान, ज्ञानसे भक्ति और भक्तिके द्वारा भगवान्‌की प्रसन्नता होती है । भक्तिकी प्रगाढ़तासे ज्ञानकी परिशुद्धि होती है और भक्ति मुक्तिका अन्तरङ्ग साधन है । सारूप्य और सालोक्यकी प्राप्ति ही मुक्ति है ।

पुराणकी मर्यादाका संरक्षण आचार्यकी महती देन है । इस दर्शनकी यह विशेषता है कि यह शिवका विद्वेषी नहीं है । गौडीयवैष्णवमत माध्वमतसे प्रभावित है । इनके सिद्धान्तमें पूर्णावतार ही माना गया है । श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि पूर्ण ब्रह्म हैं ।
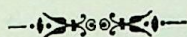
श्रीनिम्बार्काचार्य

भारतका दक्षिणप्रान्त आचार्योंकी जन्मभूमि रहा है । गोदावरी-तटपर वैदूर्यपत्तनके पास अरुणाश्रममें श्रीअरुणमुनिकी पत्नी जयन्तीदेवीके गर्भसे श्रीनियमानन्दका आविर्भाव हुआ । आगे यही आचार्य निम्बार्क नामसे प्रख्यात हुए । कुछ विद्वान् इनके पिताका नाम श्रीजगन्नाथ बतलाते हैं । इनके भक्त इनका प्रादुर्भाव द्वापरमें मानते हैं । कहते हैं कि स्वयं देवर्षि नारदने इन्हें श्रीगोपालमन्त्रकी दीक्षा दी थी ।

आचार्यचरण मथुराके पास ध्रुवक्षेत्रमें निवास करते थे । एक दिन एक दण्डी महात्मा पधारे । दो शास्त्रज्ञ एवं अनुभवसम्पन्न महापुरुषोंमें परस्पर अध्यात्म-चर्चा चलने लगी तो समयका ध्यान किसे रहे । सायंकालके पश्चात् आचार्यने अतिथिसे प्रार्थना की—'भगवन् !' मुझे स्मरण नहीं रहा, बहुत विलम्ब हो चुका । अब आप प्रसाद ग्रहण करें ।'

'अब तो सूर्यास्त हो गया ।' दण्डी संन्यासी नियमतः सूर्यास्तके पश्चात् कैसे भिक्षा ग्रहण कर सकते थे ।

'सूर्यनारायण अभी प्रकाशित हैं ।'—आचार्यके यों कहते ही सहसा प्रकाश फैल गया, मानो बादलोंमेंसे भगवान् भास्कर निकले हों । आश्रमके समीप नीमके वृक्षके ऊपर सूर्य-मण्डल प्रत्यक्ष प्रकट हो गया था । आचार्यके साथ अतिथि तथा दूसरोंने भी यह दृश्य देखा । आचार्य गद्‌गद हो रहे थे । उनके मनमें अतिथिके अनाहारके कारण जो क्षोभ हुआ, उसे उनके आराध्यने दूर कर दिया । पता नहीं स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र सूर्यरूपमें नीमके वृक्षपर उपस्थित थे या उनका कोटि-मार्तण्डमूर्ति सुदर्शनचक्र, जिसके आचार्य मूर्त अवतार थे । अतिथिने प्रसाद ग्रहण किया और सूर्यमण्डल अदृश्य हो गया । तबसे आचार्यका नाम निम्नादित्य या निम्बार्क हो गया ।

आचार्यका वेदान्त-सूत्रोंपर भाष्य वेदान्त-पारिजात-सौरभ है । उनके शिष्य केशवभट्टके अनुयायी विरक्त होते हैं और हरिव्यासके अनुयायी गृहस्थ । आचार्यने प्रस्थानत्रयीके स्थानपर प्रस्थानचतुष्टयको प्रधान माना और उनमेंसे चौथे प्रस्थान श्रीमद्भागवतको ही परम प्रमाण स्वीकार किया । श्रीनिवासाचार्य, आचार्य श्रीयादवप्रकाश, श्रीपुरुषोत्तमाचार्य, श्रीदेवाचार्य, श्रीकेशवाचार्य, आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती आदि आचार्य निम्बार्कके द्वैताद्वैत-सिद्धान्तके प्रमुख व्याख्याता हुए हैं । इन आचार्योंने अपनी टीकाओं, व्याख्याओं तथा स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें आचार्यके सिद्धान्तोंका विस्तार किया है ।

इनका मत द्वैताद्वैतके नामसे जाना जाता है । इस मतमें शरणागति या प्रपत्ति ही मुक्तिका साधन है । प्रपन्न होते ही भगवान्‌का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है । अनुग्रहसे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रागात्मिका भक्तिका उदय होता है और प्रेम होते ही भक्त क्लेशशून्य होकर भगवान्‌के भावको प्राप्त कर लेता है।

इस दर्शनकी विशेषता यह है कि जगत् और जीव दोनों सत्य हैं। अतः कर्म और भक्तिके प्रतिपादक सभी वेदभागकी मीमांसाका प्रामाण्य है। मानवके लिये जीवदशामें सभी कर्तव्यमार्गोंका अनुष्ठान एवं प्रत्येक जीवका कल्याण करना आवश्यक है; क्योंकि जीव और जगत् ईश्वर-स्वरूप अविनाशी हैं। यदि जगत्‌के एक कणका नाश जीवको कष्ट देता है तो ईश्वरकी उपासना पूर्ण नहीं है। उपासना उसका मनन है और विश्वकल्याण तथा सदाचार-रतिके द्वारा सदेह भी विदेह रहना मुक्ति है। अतः इसके द्वारा कर्मकी निष्ठाके साथ ज्ञाननिष्ठाका मणि-काञ्चन-संयोग ही लोककल्याण और राष्ट्रकल्याणकी भावनारूप इसकी महती देन है।

श्रीवल्लभाचार्य

दक्षिण भारतके काँकरवाड ग्राममें भरद्वाजगोत्रीय तैलंग ब्राह्मणोंका एक सोमयाजी परिवार बसा था। श्रीलक्ष्मण भट्टकी सातवीं पीढ़ीसे सोमयाग बराबर चलता आया था। सौ सोमयज्ञोंकी पूर्तिके उपलक्षमें काशी जाकर एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन करानेके लिये पत्नी श्रीइलम्माके साथ श्रीलक्ष्मण भट्टने यात्रा की । मार्गमें चम्पारण्यमें, जो छत्तीसगढ़के रायपुर जिलेमें है, श्रीवल्लभका जन्म हुआ। जो कुल सौ सोमयाग पूर्ण करता है, उसमें भगवदीय महापुरुषका आविर्भाव होता ही है।

श्रीवल्लभने ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही काशीमें श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे समस्त शास्त्राध्ययन पूर्ण कर लिया। वहाँसे आप वृन्दावन चले आये और कुछ दिन व्रजवास करके तीर्थाटनको निकले। विजयनगरके राजा कृष्णदेवकी सभामें उपस्थित होकर आपने शास्त्रार्थमें बड़े-बड़े पण्डितोंको पराजित किया और यहीं वैष्णवाचार्यकी उपाधि स्वीकार की। विजयनगरसे आचार्य उज्जैन आये। वहाँ आपने जिस पीपलके नीचे निवास किया, वहाँ आचार्यकी बैठक है। विभिन्न स्थानोंमें आचार्यपादकी ऐसी बैठकें अबतक हैं।

श्रीश्यामसुन्दरने स्वयं प्रकट होकर आचार्यके पुत्र बननेकी इच्छा प्रकट की। अट्ठाईस वर्षकी अवस्थामें आचार्यने विवाह किया। श्रीविट्ठलके रूपमें स्वयं विट्ठल भगवान् ही पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए। आचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभुसे मिले थे, ऐसा कुछ विद्वानोंका मत है।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें आचार्य काशीमें निवास करते थे। एक दिन हनुमानघाटपर वे गङ्गामें स्नान कर रहे थे। सहसा एक उज्ज्वल ज्योति-शिखा उठी और बहुत-से मनुष्योंने देखा कि आचार्य सशरीर ऊपर उठते जा रहे हैं। इस प्रकार ५२ वर्षकी अवस्थामें आचार्यने मर्त्यलोक छोड़ दिया।

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजीके सात पुत्र हुए—१-गिरिधरराय, २-गोविन्दराय, ३-बालकृष्ण, ४-गोकुलनाथ, ५-रघुनाथ, ६-यदुनाथ, ७-घनश्याम। श्रीव्रजनाथ भट्टजीने आचार्यपादके अणुभाष्यपर 'मरीचिका' नामक वृत्तिकी रचना की है। गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने अणुभाष्यकी बृहट्टीका 'भाष्य-प्रकाश' लिखी है। श्रीविट्ठलनाथजीके 'विद्वन्मण्डन'-की भी इन्होंने टीका की है तथा 'प्रस्थानरत्न' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ भी लिखा है।

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज शुद्धाद्वैतसिद्धान्तके प्रतिष्ठापक हैं। आचार्यके अनुसार कार्य-कारणरूप जगत् ब्रह्म ही है। ब्रह्म अपनी इच्छासे ही जगत्‌रूप बना है। जगत् न मायिक है और न भगवान्‌से भिन्न। यह ब्रह्मका अविकृत परिणाम है। भगवान्‌की कृपासे ही मुक्ति प्राप्त होती है। भगवान्‌का अनुग्रह ही पुष्टि है। इसी अनुग्रहसे भक्तिका उदय होता है। भगवान्‌के अनुग्रहरूप पुष्टिको प्रधान माननेसे श्रीवल्लभाचार्यका मत 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है।

श्रीवल्लभाचार्यजीके समयमें ही सूरदासजी उनके शरणापन्न हो गये थे। अष्टछापके कवि वल्लभीय सम्प्रदायके ही थे। उनके द्वारा हिंदी तथा हिंदूधर्मकी जो सेवा हुई, वह सर्वविदित है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीचैतन्यमहाप्रभु और उनका शिक्षाष्टक

बंगालका नदिया (नवद्वीप) ग्राम वंगीय वैष्णवोंका उसी दिन वृन्दावन हो गया, जब फाल्गुनशुक्ला पूर्णिमाको सिंह लग्नमें श्रीजगन्नाथ मिश्रके यहाँ माता शचीदेवीकी गोदमें गौर-सुन्दर निमाई प्रकट हुए। श्रीजगन्नाथ मिश्रके बड़े पुत्र विश्वरूप युवा होते ही संन्यासी हो गये। मिश्रजीका शरीर पुत्र-वियोगमें टिक न सका। माता शचीके लिये निमाई ही आधार रह गये। चञ्चल, चपल, नटखट, परमसुन्दर, प्रतिभाकी मूर्ति निमाई छोटी अवस्थामें ही प्रकाण्ड पण्डित हो गये। उन्होंने अपनी पाठशाला स्थापित कर ली और उस दिन तो नवद्वीपका पण्डितवर्ग आश्चर्यमूढ़ रह गया, जब सबसे अल्पवयस्क, बालक-से चपल निमाई पण्डितने दिग्विजयी पण्डितको पराजित कर दिया।

महाप्रभुका प्रेममय जीवन हिंदीमें 'चैतन्यचरितावली'में और बंगलामें 'अमिय निमाई-चरित' में देखने योग्य है। श्रीमहाप्रभुके अनुयायियोंमें श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, राय रामानन्द, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीव-गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीरघुनाथदास, श्रीहरिदासजी तथा श्रीनरहरि सरकार मुख्य हैं।

वे श्रीमद्भागवतको गीता एवं ब्रह्मसूत्रका भाष्य मानते थे। श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीजीव-गोस्वामीने महाप्रभुके मतके अनुसार ग्रन्थोंका निर्माण किया। इनमें 'भक्तिरसामृतसिन्धु', 'भागवतामृत,' 'षट्संदर्भ' आदि ग्रन्थ हैं। पीछे आचार्य बलदेव विद्याभूषणने ब्रह्मसूत्रपर गोविन्दभाष्य लिखा। इस प्रकार अचिन्त्यभेदाभेदवादकी पूर्ण प्रतिष्ठा आचार्य बलदेवने की। श्रीमहाप्रभुने भक्ति और श्रीकृष्ण-कीर्तनकी धारा प्रवाहित की, जो मनुष्योंको पावन करती हुई अविच्छिन्न रूपसे प्रवाहित हो रही है।

शिक्षाष्टक

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥ १॥

'चित्तरूपी दर्पणको शोधित करनेवाला, संसाररूपी महादावानलका पूर्णतया शामक, जीवोंकी कल्याणरूपिणी कुमुदिनीको विकसित करनेके लिये भावरूपी चन्द्रिकाका वितरक, विद्यारूपी वधूका जीवन-स्वरूप, आनन्दरूपी समुद्रका वर्धक, पग-पगपर पूर्ण अमृतका रसास्वादन करानेवाला, बाहर-भीतरसे देह, धृति, आत्मा और स्वभाव—सबको सर्वतोभावेन निर्मल और सुशीतल करनेवाला श्रीकृष्ण-संकीर्तन विशेषरूपसे सर्वोपरि विजयी है।'

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥२॥

'भगवन्! आपके नाम जीवोंके लिये सर्वमङ्गलप्रद हैं, अतः जीवोंके कल्याण-हेतु आप अपने राम, नारायण, कृष्ण, मुकुन्द, माधव, गोविन्द, दामोदर आदि अनेक नामोंके रूपमें नित्य प्रकाशित हैं। आपने उन नामोंमें उन-उन स्वरूपोंकी सर्वशक्तियोंको स्थापित किया है। अहैतुकी कृपावश आपने उन नामोंके स्मरणमें संध्या-वन्दन आदिकी भाँति किसी निर्दिष्ट काल आदिका भी नियम नहीं रखा अर्थात् दिन-रात किसी भी समय भगवन्नामका स्मरण-कीर्तन किया जा सकता है, ऐसा विधान भी बना दिया है। प्रभो! आपकी तो जीवोंपर ऐसी अहैतुकी कृपा है, इधर मेरा ऐसा दुर्दैव है कि आपके ऐसे सर्वफलप्रद-सुलभ नाममें अनुराग उत्पन्न न हो पाया।'

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥३॥

'सर्वपद-दलित अत्यन्त तुच्छ तृणसे भी अपनेको दीन-हीन नीच समझकर, वृक्षकी भाँति सहनशील बनकर

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा स्वयं अमानी होकर दूसरोंको यथायोग्य मान देनेवाला बनकर सदा श्रीहरिनाम-संकीर्तन करते रहना चाहिये ।'

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥४॥

'जगदीश ! न मैं धन चाहता हूँ, न जन चाहता हूँ, न सुन्दरी कविता ही चाहता हूँ। मैं केवल यही चाहता हूँ कि आप जगदीश्वरके श्रीचरण-कमलोंमें मेरी जन्म-जन्मान्तरमें अहैतुकी भक्ति हो ।'

अयि नन्दतनूज किंकरं
पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपङ्कज-
स्थितधूलिसदृशं विचिन्तय ॥५॥

'अयि नन्दनन्दन ! अपने कर्मफलसे भयंकर भवसागरमें पड़े हुए अपने नित्यदास मुझे कृपा करके अपने श्रीचरणकमलोंमें संलग्न रजःकणके समान सदा-सर्वदा अपने क्रीतदासके रूपमें ग्रहण करें ।'

नयनं गलदश्रुधारया
वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा
तव नामग्रहणे भविष्यति ॥६॥

'प्रभो ! आपका नाम-संकीर्तन करते समय मेरे नयन अश्रुधारासे, मेरा मुख गद्गद वाणीसे और मेरा शरीर पुलकावलियोंसे कब व्याप्त होगा ?'

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥७॥

'सखि ! गोविन्दके विरहमें मेरा निमेषमात्र-काल भी युगके समान प्रतीत होता है, मेरी आँखोंसे बादलोंकी वर्षाकी भाँति आँसुओंकी झड़ी लगी रहती है और यह सारा संसार मुझे शून्य-सा प्रतीत होता है ।'

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥८॥

'वह (श्रीकृष्ण) लम्पट (बहुतोंसे प्रेम करनेवाला) अपनी सेवामें अनुरक्त मुझ दासीको प्रगाढ़ आलिङ्गनद्वारा आह्लादित करे या पैरोंतले रौंद डाले अथवा अपना दर्शन न देकर मुझे मर्मान्तिक पीड़ा प्रदान करे या उसकी जैसी भी इच्छा हो करे—यहाँतक कि दूसरी प्रियाओंके साथ विनोद-विहार करे, फिर भी मेरा तो वही प्राणनाथ है । उसके अतिरिक्त मेरा दूसरा कोई नहीं है ।'

इन शिक्षाओंके द्वारा चैतन्यदेवकी शिक्षा पूर्णरूपसे व्यक्त है । ये प्रेमके अवतार हैं । इनका सिद्धान्त है कि किसी भी दुष्टका सब कुछ सहनकर उसे प्रेम-पाशमें आबद्ध कर उसकी दुष्टता छुड़ायी जा सकती है, किंतु विरोध और उसका उत्तर देकर उसकी दुष्टता दूर नहीं की जा सकती । नामसंकीर्तनके अतिरिक्त कलियुगमें उद्धारका अन्य कोई भी मार्ग प्रशस्त नहीं है । यह उनका उद्घोष है ।

आचार्य पाणिनि

पाणिनिके जीवनके विषयमें विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है । पतञ्जलिके अनुसार इनके पिताका नाम पणि और माताका नाम दाक्षी था । सम्भवतः ये दक्षकुलकी थीं—

पणीति कश्चिन्मुनिरस्ति पूर्वं
स पाणिनिं नाम कुमारमाप ।
स्वतुल्यनाम्ना तनयेन सोऽपि
दाक्षीमुदूढां दृढमभ्यनन्दत् ॥

(महाभाष्य १।१।२०)

पतञ्जलि-चर्चित संग्रह-ग्रन्थप्रणेता व्याडिका नाम दाक्षायण है (महाभा० २।३।६६) । इसी दाक्षायणको काशिका (६।२।६९) में दाक्षि नामसे कहा गया है । व्याडि पाणिनिके मामा थे; क्योंकि व्याडिकी भगिनी दाक्षीका नाम व्याड्या भी है, अतः इस परम्परापर ध्यान देनेसे व्याड पाणिनिके नाना थे । पाणिनीय शिक्षा और वेदार्थ-दीपिकाके अनुसार पिङ्गलको पाणिनिका अनुज कहा गया है ।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यशस्तिलकचम्पूमें भी **'पणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु'** (आ० २, पृ० २३६) कहा गया है । त्रिकाण्डशेष कोषमें **पाणिनिः, पाणिभः, आहिकः, दाक्षीपुत्रः, शालंकी, शालातुरीयः**—इन शब्दोंको पर्यायवाची माना गया है । गुणरत्नमहोदधिमें शालापुर ग्रामको पाणिनिका उत्पत्तिस्थान कहा गया है । यह लाहौरके समीप है । चीनीयात्री श्युआन चुआङ् मध्य एशियासे आते समय शालापुरमें ठहरा था । उसके लेखके अनुसार उद्भाण्डसे चार मीलकी दूरीपर शालापुर ग्राम है, जो पाणिनिका जन्मस्थान है । यहीं शब्दशास्त्रकी रचना की गयी थी । उसके आगमन-कालतक पाणिनिकी एक प्रतिमा भी वहाँ विद्यमान थी । यह सातवीं शताब्दीकी बात है ।

आचार्य वर्ष और पाणिनि

कथासरित्सागरकी कथाके अनुसार पाटलिपुत्रके निवासी वर्ष पाणिनिके गुरु हैं, किंतु वर्षको नन्दका समकालीन और पाणिनिको उससे प्राचीन माना जाता है—

अथ कालेन वर्षस्य शिष्यवर्गो महानभूत् ।
तत्रैकः पाणिनिर्नाम जडबुद्धितरो भवेत् ॥

(कथासरित्सागर १।४।२०)

सूत्रवृत्तिकार जैमिनिने भी उपवर्षका स्मरण किया है, यदि वर्ष उन्हींके भाई हों तो ये नन्दकालका न होनेसे पाणिनिके गुरु माने जा सकते हैं । महाभाष्य (३।२।१०८) के अनुसार कौत्स पाणिनिके शिष्य थे—**'उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्'** । काशिकावृत्तिमें इसी सूत्रपर दो उदाहरण और हैं—**अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्, उपशुश्रूषिवान् कौत्सः पाणिनिम् ।**

पाणिनिके दो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं—पहला व्याकरण-अष्टाध्यायी और दूसरा जाम्बवती-परिणय—

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम् ॥

(राजशेखर)

अष्टाध्यायीकी रचनाके बाद सभी व्याकरण समाप्त हो गये । क्षेमेन्द्रने पाणिनिको कविके रूपमें स्वीकार किया है । आठ अध्यायोंके ३२ पादोंमें कुल ३९८१ सूत्र हैं और १४ माहेश्वर प्रत्याहार-सूत्र हैं । इनके सूत्र ६ वर्गोंमें विभक्त हैं—संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश और अधिकार-सूत्र । व्याकरणकी पूर्तिके लिये धातुपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र और लिङ्गानुशासन है ।

इनके ग्रन्थके अध्ययनसे उस समयकी भौगोलिक, राजनीतिक आदि सभी स्थितियोंका ज्ञान होता था । पाणिनीय व्याकरणका अधिक महत्त्व वैदिक और लौकिक शब्दोंके निर्माणकी प्रक्रियाका निर्देश होनेसे ही है । आज शब्दशास्त्रका अतिशय महत्त्व पाणिनि-व्याकरणके आधारपर ही है ।

आचार्य पतञ्जलि

पतञ्जलि पाणिनीय व्याकरणके एक महान् विचारक और सूत्रोंके व्याख्याता हैं । निर्भीक विचार एवं अपेक्षित विकासके कारण इनकी रचना भाष्य नहीं महाभाष्य कही जाती है । विकासक्रममें उपलब्ध सभी विचारोंको इन्होंने पाणिनीय व्याकरणमें समाहित किया है । इनके गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिवृत् आदि अनेक नाम हैं ।

गोनर्दीय इनका स्थानीय नाम है । गोण्डा जिलाको प्राचीन गोनर्ददेश कहा जाता है । राजतरंगिणीके अनुसार गोनर्द नामसे कश्मीरके तीन राजाओंका निर्देश मिलता है, अतः गोनर्दीय उपाधिके कारण इन्हें कश्मीरका निवासी भी कहा जाता है । गोणिकापुत्र इनकी मातासे सम्बद्ध नाम है । शेष नाम शेषावतारसे सम्बद्ध हैं ।

पतञ्जलि राजा पुष्यमित्रके समकालीन हैं, अतः अनेक विद्वानोंने ईसासे १५० वर्ष पूर्व इनकी स्थिति मानी है । इनका जीवन-चरित्र अनेक पुराणोंमें वर्णित है । भविष्यपुराणके अनुसार ये बुद्धिमान् ब्राह्मण एवं उपाध्याय थे तथा सभी शास्त्रोंमें पारङ्गत और विष्णुभक्त थे । काशीके नागकुँआपर शेषनागके अवतारके रूपमें इनकी स्थिति वर्णित है । इनकी व्याकरण-सम्बन्धी सबसे महत्त्वपूर्ण

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रचना महाभाष्य है। यह कात्यायनके वार्तिकको आधार बनाकर लिखा गया है। महाभाष्यकी भाषा अत्यन्त सरल, सरस और स्वाभाविक है। यह ग्रन्थ-रचनाके लिये आदर्शभूत है। यह ग्रन्थ अनेक कथानकोंको उद्धृत करते हुए अतिशय प्राञ्जल भाषामें लिखा गया है। यह ग्रन्थ समग्र है या असमग्र—यह कहना कठिन है। इसके अनेक विशिष्ट टीकाकार हैं। भर्तृहरिकी टीका सम्प्रति सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है। इस समय कैयटविरचित 'प्रदीप' और उसकी नागेशभट्टविरचित 'उद्योग' टीका प्रसिद्ध है। वस्तुतः महाभाष्यको व्याकरणसे हटा दिया जाय तो पाणिनीय व्याकरण सर्वथा अपूर्ण हो जायगा। पतञ्जलिकी अन्य रचनाओंमें योगसूत्र और चरकसंहितापर वार्तिककी चर्चा मिलती है। यथा—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां
मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां
पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

रामचन्द्र दीक्षित-विरचित 'पतञ्जलि-चरित' में पतञ्जलिके वैद्यकशास्त्रपर वार्तिक-ग्रन्थका निर्देश है—**'वैद्यकशास्त्रे वार्तिकानि च ततः।'**

'वातस्कन्धपैत्तस्कन्धोपेतसिद्धान्तसारावली' नामका एक वैद्यक ग्रन्थ 'इंडिया-आफिस' लन्दनकी लाइब्रेरीमें उपलब्ध है, किंतु पतञ्जलि नामके एक ही व्यक्ति हुए, यह कहना कठिन है। पतञ्जलिकी प्रसिद्धि योगसूत्रोंके कारण भी है। शिक्षा-जगत् इनका सदाके लिये ऋणी रहेगा।
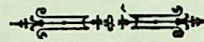
आचार्य कात्यायन

वार्तिककार कात्यायनका समय विक्रमसे लगभग २९००-३००० वर्ष पूर्व माना जाता है। महाभाष्यसे विदित होता है कि कात्यायन दाक्षिणात्य थे। कात्यायनशाखाका अध्ययन भी प्रायः महाराष्ट्रमें रहा है। सायणने ऋग्वेद-भाष्यकी भूमिकामें स्पष्टरूपसे वार्तिककारका नाम वररुचि लिखा है—

तस्यैतस्य व्याकरणस्य प्रयोजनविशेषो वररुचिना वार्तिककारेण दर्शितः—रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्।

(षडङ्गप्रकरण पृ० २६)

'यथा लौकिकवैदिकेषु' वार्तिककी व्याख्या करते हुए महाभाष्यकार लिखते हैं— **प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः—'यथा लोके वेदे चे'ति प्रयोक्तव्ये यथा लौकिकवैदिकेषु प्रयुञ्जते'** (महाभाष्य १।१।१।५)।

कथासरित्सागरमें वार्तिककार कात्यायनको कौशाम्बीका निवासी कहा गया है। अनेक आधुनिक ऐतिहासिक **'वहीनरस्येदं वचनम्'** (महाभाष्य ७।३।१) वार्तिकमें 'वहीनर' शब्द देखकर वार्तिककार कात्यायनको उदयन-पुत्र वहीनरसे अर्वाचीन मानते हैं, परंतु यह मत सर्वथा अयुक्त है।

कात्यायनकी अन्य कृतियाँ

(१) स्वर्गारोहण काव्य—महाभाष्यमें वाररुच काव्यका उल्लेख मिलता है। यह तो सर्वविदित ही है कि वररुचि कात्यायन गोत्रके होनेसे कात्यायन भी कहे जाते हैं। महाराज समुद्रगुप्तने कृष्णचरितके मुनिकविवर्णनमें वररुचि और कात्यायन नामसे एक ही व्यक्तिका स्मरण करते हुए उसे वार्तिककार और 'स्वर्गारोहण' काव्यका कर्ता कहा है—

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः॥
न केवलं व्याकरणं पुपोष
दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः।
काव्येऽपि भूयोऽनुचकार तं वै
कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्षः॥

(२) भ्राजसंज्ञक श्लोक—इन श्लोकोंका उल्लेख महाभाष्यमें मिलता है। कैयट आदि टीकाकारोंका मत है कि ये श्लोक वार्तिककार कात्यायनके हैं। पर ये श्लोक इस समय अप्राप्त हैं।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(३) छन्दःशास्त्र अथवा साहित्यशास्त्र—कात्यायनने कोई छन्दःशास्त्र अथवा साहित्यशास्त्रका ग्रन्थ भी लिखा था, जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

(४) स्मृति—षड्गुरुशिष्यने कात्यायन-स्मृति और भ्राजसंज्ञक श्लोकोंका कर्ता वार्तिककारको माना है—

स्मृतेश्च कर्ता श्लोकानां भ्राजनाम्नां च कारकः।

(५) सामुद्रिक ग्रन्थ—रामायणकी विभिन्न टीकाओंमें उद्धृत कात्यायनके सामुद्रिक-शास्त्र-सम्बन्धी वचन मिलते हैं। इससे विदित होता है कि वररुचि कात्यायनने सामुद्रिक-शास्त्रपर भी कोई ग्रन्थ रचा था।

(६) उभयसारिकाभाण—मद्राससे प्रकाशित चतुर्भाणीमें वररुचिमुनिकृत 'उभयसारिका' नामक एक भाण छपा है। **'प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः'** नियमके अनुसार वार्तिककार वररुचिकी कृतिमें तद्धित-प्रयोगोंका बाहुल्य होना चाहिये। सम्भव है कि वह विक्रमसमकालिक वररुचि कविकी कृति हो।

आचार्य कात्यायनका वैदुष्य विलक्षण था। इनकी कृतियोंमें पाणिनि-व्याकरणपर 'वार्तिक' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा-जगत् इनका सर्वदा ऋणी रहेगा। इनका महान् व्यक्तित्व एवं अद्वितीय प्रतिभा सदा-सर्वदा अध्ययनमें रुचि एवं जिज्ञासा जाग्रत् करती रहेगी।

महर्षि जैमिनि

जैमिनि कृष्णद्वैपायनके शिष्य थे। व्यासदेवने इन्हें सामवेद पढ़ाया था। जैमिनिने सामसम्बन्धी जैमिनीय-संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रौत और गृह्यसूत्रोंका प्रणयन किया था। इनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त इन्होंने १६ अध्याय अर्थात् संकर्षणकाण्डके साथ पूर्वमीमांसाका भी प्रणयन किया था। यह मीमांसाका साङ्गोपाङ्ग शेष प्रवचन है। इसमें प्रचलित यज्ञीय क्रियाओंमें मतभेद देखकर ब्राह्मण एवं वैदिक शाखाओंके ग्रन्थोंको लेकर मतभेद दूर करनेकी दृष्टिसे उनके तात्पर्योंका निरूपण युक्तियुक्त ढंगसे किया गया है। जैमिनिके पिताका नाम अज्ञात है। प्रयोगके अनुसार जिमिन् या जैमन् हो सकता है। मीमांसा जैमिनीया कहलाती है। जैमिनीय प्रयोगकी दृष्टिसे जैमन् भी नाम हो सकता है।

इनका समय निश्चित करना कठिन है; क्योंकि कृष्ण-द्वैपायन बादरायण व्यासका समय द्वापरमें माना जाता है, अतः ये भी द्वापरमें ही माने जाते हैं। इनके सूत्रोंपर अनेक व्याख्याकारोंने प्रामाणिक व्याख्याएँ की हैं, जिनमें बोधायन, उपवर्ष, देवस्वामी, भवदास आदि प्रसिद्ध हैं।

शबरस्वामी

शबरस्वामी मीमांसा-सूत्रोंके व्याख्याता हैं। इस समय मीमांसापर उपलब्ध भाष्योंमें शाबर-भाष्य ही है। इनके इतिवृत्तमें किंवदन्तियाँ ही निर्दिष्ट की जा सकती हैं। आद्य शंकराचार्यने उत्तरमीमांसा (३।३।५३) के भाष्यमें शबरस्वामीका स्मरण किया है। अतः इनका शंकरसे पूर्ववर्ती होना सिद्ध है। शबरमुनिने पर्णकुटीमें निवास करते हुए सरल भाषामें अनेक ऐतिहासिक तथ्यों और गाथाओंका उल्लेख करते हुए भाष्यकी रचना की है। इनके पूर्ववर्ती आचार्योंकी रचनाओंमें लिखित सभी विषय इसमें समाहित होनेके कारण यह ग्रन्थ अपेक्षित हो गया है। मीमांसा-सूत्रोंपर एकमात्र इसी भाष्यका पल्लवन परवर्ती आचार्योंद्वारा किया गया है। कुमारिल तथा प्रभाकर-जैसे विशिष्ट विद्वानोंकी व्याख्या ही इनकी गुरुता एवं विद्वत्ताकी सूचनाके लिये पर्याप्त है। आजका मीमांसा-शास्त्र शबरकी भूमिपर ही अवस्थित है।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचार्य कुमारिल भट्ट

'किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति'—जब भारत बौद्धप्राय हो गया था, तब काशीकी महाराज्ञी अपनी हार्दिक धार्मिक व्यथासे अत्यन्त पीड़ित थीं। वे अपनी व्यथा किससे कहतीं? उस समय वेदों तथा सनातनधर्मका नाम लेना अपराध हो गया था। उस समय निर्णयात्मक वाणीमें 'मैं वेदोंका उद्धार करूँगा' यह आश्वासन देना आचार्य कुमारिलका ही साहस था।

बौद्धमतका खण्डन करनेके लिये आचार्यको बौद्ध विद्वानोंसे अध्ययन करना पड़ा और अपनी लोकोत्तर प्रतिभाके बलपर आचार्यने बौद्ध पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर अपने वेदोद्धारकी प्रतिज्ञाको सफल कर दिया। आचार्य कुमारिलकी विद्वत्ताके लिये उनके शिष्य मण्डन मिश्रका ही परिचय पर्याप्त है, जिनके आश्रमकी सारिकाएँ भी श्लोकोंमें वार्तालाप करती थीं।

आचार्य कुमारिलकी शास्त्रोंपर जो श्रद्धा थी, आजके युगमें उसकी कल्पना भी कठिन है। वेदोंकी रक्षा और सनातनधर्मकी स्थापनाके लिये जो कुछ किया गया, वह सब तो ठीक था; क्योंकि उसका उद्देश्य पवित्र था, किंतु जिनसे अध्ययन किया, उन्हींका खण्डन तो गुरुद्रोह ही हुआ। आचार्यको न कष्टका भय था और न शरीरका मोह। 'मैंने गुरुद्रोह किया है'—यह विचारकर उन्होंने प्रायश्चित्तका निश्चय किया। प्रायश्चित्त भी क्या? जब श्रीशंकराचार्य उनसे शास्त्रार्थ करने पहुँचे, तब वे प्रयागमें त्रिवेणी-तटपर तुषाग्नि (धानकी भूसीकी आग) में बैठे थे, जो बहुत धीरे-धीरे जलाकर प्राण लेती है।

आचार्य कुमारिलका जन्म दक्षिण-भारतमें हुआ था। वे पूर्वमीमांसाके मुख्य आचार्य हैं। उनका मत मीमांसामें गुरुमत कहा जाता है। पूर्वमीमांसा-दर्शनके शाबरभाष्यपर उनकी टीका है। वह टीका श्लोक-वार्तिक, तन्त्र-वार्तिक एवं टुप्टीका—इन तीन नामोंसे क्रमशः विभक्त है। श्रीशंकराचार्यने अपने ग्रन्थोंमें इनका आदरपूर्वक स्मरण किया है।

प्रभाकर मिश्र

कुमारिलके बाद प्रभाकर मिश्रके द्वारा प्रतिपादित मत मीमांसामें गुरुमतके नामसे प्रसिद्ध है। प्रभाकर कुमारिलके शिष्य माने जाते हैं। इनके मतकी परम्परा अतिशय प्राचीन है, किंतु आज गुरुमतके रूपमें ही उपलब्ध है। इनके मतकी चर्चा मण्डनाचार्यने विधिविवेक आदि ग्रन्थोंमें जरत् प्रभाकर, नवीन प्रभाकर, गुरु आदिके द्वारा भिन्न-भिन्न रूपमें की है। किसी समय कुमारिल शिष्योंको पढ़ा रहे थे, उसमें एक पङ्क्ति थी—**'पूर्वं तु नोक्तमधुनापि नोक्तम्'**—पहले भी नहीं कहा, अभी भी नहीं कहा—इसे देखकर कुमारिल सोचमें पड़ गये। तब प्रभाकरने कहा—'गुरुदेव! जो पूर्वमें **'तु'** शब्दसे कहा गया, वही यहाँ **'अपि'** शब्दसे कहा गया।' कुमारिलने शिष्यकी प्रतिभासे प्रसन्न होकर कहा—**'त्वमेव गुरुः'**। अतः गुरुमतसे इनके सिद्धान्तकी प्रसिद्धि हो गयी।

प्रभाकरने शाबरभाष्यपर लघ्वी तथा बृहती नामकी दो टीकाएँ लिखी थीं। इनके ग्रन्थको देखनेसे यह अवगत होता है कि ये पारमार्थिक अद्वैतके समर्थक थे, किंतु व्यावहारिक दृष्टिसे कर्मकाण्डकी उपेक्षा भी इन्हें मान्य नहीं थी।

श्रीश्रीकण्ठाचार्य

आचार्य श्रीरामानुजके वैष्णव विशिष्टाद्वैत-मतसे कुछ मिलता हुआ शैव भक्तिप्रधान श्रीकण्ठाचार्यका विशिष्टाद्वैतवाद है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें भगवान् शंकर ही परम तत्त्व माने गये हैं। श्रीकण्ठाचार्यने अपने भाष्यमें अपने पूर्वाचार्योंके रूपमें शैवाचार्य तथा श्रीश्वेताचार्यका नाम लिया है।

आचार्य श्रीकण्ठ श्रीरामानुजाचार्यसे पहले हुए हैं। वे श्रीशंकराचार्यके पूर्ववर्ती हैं, ऐसा भी कुछ विद्वान्

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहते हैं। दक्षिण भारतमें ही उनका निवास था। वे महायोगी थे और भगवान् शंकरके अंशावतार माने जाते थे। वे दहर-विद्याके आराधक थे। ब्रह्मसूत्रका शैव-भाष्य और मृगेन्द्रसंहिताकी वृत्ति उनके दो ग्रन्थ हैं। उनके भाष्यकी भाषा अत्यन्त मधुर है। उन्होंने अपने भावोंको थोड़े, पर महत्त्वपूर्ण शब्दोंमें व्यक्त किया है। श्रीअघोर शिवाचार्यने श्रीकण्ठाचार्यकी मृगेन्द्रसंहिता-वृत्तिकी व्याख्या लिखी है।

श्रीअभिनवगुप्तपादाचार्य

प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके आचार्योंमें सोमानन्दनाथ, उदयकर सूनु, वसुगुप्ताचार्य, भट्ट कल्लटेन्दु, उत्पलाचार्य आदिके नाम मिलते हैं, पर इन आचार्योंके ग्रन्थ नहीं मिलते। केवल अभिनवगुप्ताचार्यके गीताभाष्य आदि ग्रन्थ एवं शिवसूत्रोंकी व्याख्या मिलती है। आचार्य अभिनवगुप्त-लिखित 'अभिनव भारती' आदि सैकड़ों छोटी-बड़ी पुस्तकोंका पता कान्तिचन्द्रजीने अपने शोधमें प्रदृष्ट किया है।

महर्षि कात्यायन तथा वररुचिके वंशमें परम विद्वान् सौचुकके पुत्र महात्मा भूतिराज श्रीअभिनवगुप्ताचार्यके पिता एवं गुरु भी थे। भगवान् शंकरका अपनी साधनाद्वारा साक्षात्कार करके ही आचार्य गीताभाष्यमें प्रवृत्त हुए थे। इनके दर्शनके अनुसार विश्व सत्य है, अतः विश्वका कल्याण सदाशिवकी आराधना है।

श्रीभट्टभास्कराचार्य

महाराष्ट्रमें नासिकके पास एक ताम्रपत्र पाया गया है। उससे पता लगता है कि भट्टभास्कर ज्योतिषाचार्य भास्करके पूर्वपुरुष थे। ये शाण्डिल्य गोत्रमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम त्रिविक्रम था। ये कविचक्रवर्ती कहे जाते थे। 'सिद्धान्तशिरोमणि' के रचयिता ज्योतिषी भास्कराचार्य इनकी छठी संतति-परम्परामें हुए। इन्होंने 'वेदान्तसूत्र'पर भाष्य लिखा था। इन्होंने 'भेदाभेदवाद'की स्थापना की। ये ब्रह्मको सगुण-निराकार मानते थे।

इन्होंने संसारकी उपेक्षा नहीं की एवं उपासक-वृन्दोंकी चित्त-द्रवताके विकासमें अधिकारके अनुरूप कर्मनिष्ठा होती रहे, इसके लिये भास्करने सगुण और निर्गुण ब्रह्मको, जो पूर्वाचार्योंकी परम्परासे आ रहा है, स्थान देकर समन्वयकी भावनाकी शिक्षा दी है। इनके अनुसार भक्तिकी ही प्रधानता है! अतः भक्तिभावित हृदय होकर करुणासे आप्लावित अशेष प्राणियोंके कल्याणकी भावना ही इस दर्शनकी प्रमुख शिक्षा है।

महामात्य चाणक्य और उनकी शिक्षा

आचार्य चाणक्य 'कौटिलीय' अर्थशास्त्र नामक महान् ग्रन्थके प्रणेता हैं! इनका द्वितीय ग्रन्थ 'चाणक्य-नीति' लोक-व्यवहारके ज्ञानका विलक्षण ग्रन्थ है। विष्णुगुप्त, कौटिल्य तथा चाणक्य—इनके ये तीन नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, किंतु ग्रन्थान्तरोंमें वात्स्यायन, मल्लनाग, कुटिल, द्रामिल, पक्षिलस्वामिन् तथा अंगुल आदि नाम भी उपलब्ध होते हैं। इनके पिताका नाम चणक था। चणकके पुत्र होनेके कारण ये चाणक्य कहलाते हैं। विष्णुगुप्त नाम पितृप्रदत्त है। 'कामन्दकीय-नीतिसार' नामक ग्रन्थ (ई॰स॰४००)में चाणक्यका निर्देश 'विष्णुगुप्त' नामसे ही किया गया है—

नीतिशास्त्रामृतं धीमानर्थशास्त्रमहोदधेः।
समुद्दध्रे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय वेधसे॥

अर्थात् 'अर्थशास्त्ररूपी समुद्रसे जिन्होंने नीतिशास्त्ररूपी अमृतको प्रकट किया, उन विष्णुगुप्त आचार्यको मैं प्रणाम करता हूँ।' इनका कौटिल्य नाम 'कुटल' नामक गोत्रमें उत्पन्न होनेके कारण प्रसिद्ध हुआ! आचार्यने अपने अर्थशास्त्रमें प्रायः 'कौटिल्य' नामसे ही अपना निर्देश

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया है। अर्थशास्त्रके प्रणेताके रूपमें कौटिल्य नामकी ही प्रसिद्धि है, चाणक्य नामकी नहीं और नीतिशास्त्रके रचयिताके रूपमें चाणक्य नामकी ही प्रसिद्धि है न कि कौटिल्य नामकी।

महामात्य चाणक्यका जीवन-दर्शन महान् था। यद्यपि वे विविध विद्याओंके ज्ञाता थे, किंतु उन्होंने रचना-कौशलके लिये जो विशिष्ट क्षेत्र चुना, उसमें विशिष्ट हेतु है गुप्तवंशकी प्रतिष्ठापना और नन्दवंशका विनाश। चन्द्रवंशके प्रधान अमात्य होनेके कारण राज्यकी आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा तथा उसके सर्वतोमुखी अभ्युदयका सम्पूर्ण दायित्व उनके ऊपर था। उन्होंने अपने दायित्वका निर्वाह कितनी कुशलतासे किया, यह तथ्य किसीसे छिपा नहीं है।

शिक्षाके विकासके क्रममें अर्थशास्त्रका विशेष महत्त्व है। इसका प्रथम विनयाधिकारिक प्रकरण है। इसमें १८ प्रकरणोंका संग्रह है। प्रथम उद्‌देश्य 'विद्यासमुद्‌देश' है। इसमें चार विद्याओंका निर्देश मिलता है—१-आन्वीक्षिकी—अध्यात्मविद्या या हेतुविद्या २-त्रयी—ऋक्, यजुः और सामवेदात्मक ती विद्याएँ, ३-वार्ता—कृषि, पशुपालन, वाणिज्य-विद्या और ४-दण्डनीति—राजनीति-विद्या।

आचार्य चाणक्यके जीवन-दर्शनसे हमें लोक-व्यवहारका समुचित परिज्ञान प्राप्त होता है। मर्यादित तथा सन्नीतियुक्त राजसत्ता ही प्रजाका कल्याण कर सकती है। दुराचारी, दुष्ट तथा धर्म-मर्यादा, शास्त्र-मर्यादा और लोक-मर्यादासे सर्वथा विपरीत चलनेवाला शासक राजसत्ताका अधिकारी नहीं हो सकता।

भारतीय सनातन विचार-सरणिमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयको जीवन तथा समाजका मूलाधार माना गया है। प्रवृत्तिमार्ग तथा निवृत्तिमार्ग—ये दोनों विचारधाराएँ अनादिकालसे समानान्तररूपमें चली आयी हैं। महामात्य आचार्य चाणक्यने, प्रवृत्तिमार्गमें किस प्रकार लोककल्याण हो सकता है, इसी विषयको अपने चिन्तन-मननका विषय बनाया। उन्होंने पुरुषार्थ-चतुष्टयमें धर्म, अर्थ एवं कामका ही विवेचन मुख्यतः किया है। उनका अर्थ एवं काम सर्वदा धर्मसे मर्यादित रहा है। आजके समाजमें 'अर्थार्जन' सर्वदा निरङ्कुश हो गया है, इस दृष्टिसे चाणक्यकी मर्यादित अर्थनीति और लोकनीतिका बहुत अधिक महत्त्व है। समाज और देशके विकासमें अर्थ ही मूल है। सन्मार्गसे उपार्जित अर्थ ही सुखका हेतु है।

राजसत्ताके परिचालनका समुचित परिज्ञान बिना उपदेष्टाके सम्भव नहीं है। इसी दृष्टिसे प्राचीनकालसे ही राजाको मन्त्रणा देनेके लिये शास्त्र तथा लोकरीतिके ज्ञाताकी आवश्यकता समझी गयी। इसी दृष्टिसे आचार्य चाणक्यने 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थका आरम्भ किसी देव-वन्दनासे न कर शुक्राचार्य तथा बृहस्पतिको गुरु मानकर उन्हें प्रणाम किया है और इन्हें ही अपने जीवनदर्शनका मुख्य उपदेष्टा माना है। अतः ऐसे उदात्त विचारकके निर्देश समाज, देश तथा व्यक्तिके लिये सर्वदा प्रेरणाके स्रोत बने रहेंगे।

महामति विदुर

महाराज शन्तनुके पुत्र विचित्रवीर्यके क्षेत्रसे महर्षि कृष्णद्वैपायनने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर—इन तीनोंको उत्पन्न किया था, जो तीनों अग्नियोंके समान एवं कुरुवंशके प्रवर्धक थे—

क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा॥
त्रीनग्नीनिव कौरव्याञ्जनयामास वीर्यवान्।

(महा० आदिपर्व १।९४-९५)

विदुरके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि वे कुरुजांगल प्रदेशकी राजधानी हस्तिनापुरके बाहर कुटियाका निर्माण कर भिक्षावृत्तिके द्वारा जीवन-निर्वाह करते थे। उत्तरप्रदेशके मेरठ जिलेमें गङ्गाके निकट हस्तिनापुरसे कुछ दूर विदुरका आश्रम आज भी प्रसिद्ध है।

महामति विदुर मात्र धार्मिक ही थे, ऐसी बात नहीं है, अपितु ये धनुर्वेद, वेद, गदा-युद्ध, तलवार-युद्ध, गजारोहण आदिमें भी पारङ्गत थे। ये इतिहास, पुराण एवं अनेक प्रकारकी शिक्षाओंमें दक्ष थे। साथ ही

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्म-नीतिके परम तत्त्ववेत्ता थे ।

विदुरका विवाह राजा देवककी कन्या पारासरीके साथ हुआ था । इनके अनेक पुत्र थे । ये स्वभावतः धार्मिक थे । इनकी पाण्डवोंके प्रति सहानुभूति थी, ऐसा इनके व्यवहारसे व्यक्त होता था ।

विदुरकी शिक्षा

विदुर बृहस्पति-प्रणीत दण्डनीति-शास्त्रमें विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे । उद्योगपर्वके ३३वें अध्यायमें इन्होंने कर्तव्य-शिक्षाका निर्देश करते हुए कहा है कि कल्याणकामी पुरुषको छः दोषोंका परित्याग करना चाहिये—निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीघसूत्रता । इसी प्रकार समुद्रमें टूटी हुई नौकाके समान पुरुषोंको इन विषयोंसे सम्पर्क नहीं रखना चाहिये—अप्रवक्ता आचार्य, अध्ययनहीन ऋत्विक्, अरक्षक राजा, अप्रियवादिनी भार्या, ग्रामवासके इच्छुक गोरक्षक और वनवासके इच्छुक नापित । नित्य अर्थागम, आरोग्य, प्रिय बोलनेवाली एवं अनुकूल भार्या, अधीन पुत्र और अर्थकरी विद्या—ये छः जीवलोकको सुख देनेवाले हैं । इस संसारमें असावधान पुरुष हैं इसलिये चोर हैं, व्याधिग्रस्त पुरुष हैं इसलिये चिकित्सक हैं, कामी व्यक्ति हैं इसलिये स्त्रियाँ हैं, यागकर्ता हैं इसलिये याजक हैं, परस्पर झगड़ालू प्रजा है अतः राजा है और मूर्ख हैं इसलिये पण्डित हैं ।

इस प्रकार महामति विदुरने लोककल्याणकी भावनासे अनेक नीतिविषयक उपदेश दिये हैं । उनका कहना है कि क्षमावान् पुरुषके लिये एक ही दोष है कि लोग उसे संसारमें असमर्थ कहते हैं,किंतु यह क्षमा परम बल है । क्षमा अशक्तोंका गुण और शक्त पुरुषोंके लिये अलंकार है । क्षमा एक वशीकरण है, अतः क्षमाके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है । क्षमारूपी तलवार जिसके हाथमें है, उसका दुर्जन क्या कर सकता है—

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते ।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥

(उद्योगपर्व ३३ । ५०)

हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदिमें इनके नीति-श्लोकोंको निर्दिष्ट कर अनेक कथाओंसे पल्लवित करते हुए नीतिशास्त्रका उपदेश आज भी प्रचलित है ।

विदुरने योगप्रक्रियासे अपने शरीरका त्याग कर महाराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश किया था । इसका प्रधान कारण यह था कि यक्षरूपी धर्मने कहा था कि 'युधिष्ठिर ! तुम और विदुर —दोनों ही मेरे अंश हो अर्थात् एक ही तत्त्व हो ।'

युद्धका उपक्रम होनेपर विदुरने बड़े सहज शब्दोंमें कहा था कि 'महाराज ! युद्धका निवारण करें । युधिष्ठिरके साथ संधि कर लें।' युद्धके आरम्भ होनेपर विदुर मौन हो गये । उन्होंने युद्धको अपरिहार्य मानकर धृतराष्ट्रको कर्तव्य-पालनके लिये आश्वस्त करते हुए कहा—'श्रीकृष्ण ही जगत्के कर्ता हैं । उन्हींकी इच्छासे सभी कार्य अनुष्ठित होते हैं । ये महापराक्रमी हैं और इनका विरोध विनाशका कारण होता है । इनके प्रति विरोधकी भावनाएँ आपके नाशका कारण हैं ।' अन्तर्विशुद्धि ही भक्तका असाधारण लक्षण है । भक्त विदुर श्रीकृष्णको परमेश्वरके रूपमें जानते हुए भी उनके साथ मित्रताका व्यवहार करते थे । विदुरका कोई भी आचरण भक्तिसे शून्य नहीं था । इस प्रकार विदुरने लोककल्याणकी भावनासे ही धर्माचरण करते हुए धर्मनीतिका उपदेश किया । इनके सभी उपदेश शिक्षापरक हैं । अन्तिम समयमें गान्धारी और कुन्तीके साथ जब धृतराष्ट्रने अरण्यकी यात्रा की, तब विदुर भी वल्कल धारण कर उनकी सेवामें चले गये ।

सती अनसूया

भारतवर्षकी नारियोंमें पतिव्रता अनसूयाजीका उच्चतम स्थान है । इनका जन्म स्वायम्भुव मनुकी पुत्री देवहूतिसे हुआ था । इनके पिता ब्रह्मर्षि कर्दम थे । पुराणादि सभी शास्त्रोंने अनसूयाजीके सत्य, धर्म, शील, सदाचार, विनय, लज्जा, क्षमा, सहिष्णुता तथा तपस्याके साथ पातिव्रत्यके पूर्ण विकासकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । विधाताके मानसपुत्र अत्रि इनके पति थे । पतिसेवासे अनसूयाने पतिके हृदयको जीत लिया था । ये भारतीय नारियोंको

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पातिव्रत्यकी शिक्षा-दीक्षा देनेके साथ ही देवोंकी कल्याण-साधनामें निरत थीं ।

भगवती लक्ष्मी, सती (पार्वती) और सरस्वतीको अपने पातिव्रत्यका अभिमान था । भगवान् अपने आश्रितोंके अहंकारके अङ्कुरको सदा ध्वस्त कर देते हैं, यही उनका भक्तवात्सल्य है । कौतुकप्रिय भगवान्ने उन जगद्वन्दनीया देवियोंके अहंका नाश करनेके लिये नारदके मनमें प्रेरणा की । नारदने देवियोंके पास पहुँचकर अपनी लीला आरम्भ कर दी । वे लक्ष्मीके पास पहुँचे और बोले—'माँ! मेरा क्या ठिकाना, रमता योगी, जिधर मन हुआ चल दिया ।' देवी हँसने लगीं । वे पुनः बोले—'मैं घूमते-घूमते पयस्विनीके किनारे अत्रिके आश्रमपर पहुँचा और पतिव्रता देवी अनसूयाके दर्शनसे कृतार्थ हो गया । माँ! आज संसारमें उनके समान पतिव्रता कोई नहीं है । देखो न, उन्होंने अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे गङ्गाकी धारा प्रकट कर दी है, जो सभी पापोंको नाश करनेवाली मन्दाकिनीके नामसे प्रसिद्ध है । चौदहों भुवनोंमें घूमकर मैं यह कहनेको बाध्य हूँ कि वैसी पतिव्रता-शिरोमणि विश्वमें नहीं है ।'

देवीने कहा—'उनके पातिव्रत्यकी चर्चा तो मैंने भी सुनी है, किंतु क्या वे मुझसे भी बढ़कर हैं?' नारदने कहा—'माताजी! यदि आप सत्य सुनना चाहती हैं तो आप अनसूयाके समक्ष पातिव्रत्य-धर्मके पालनमें नितान्त नगण्य हैं ।' देवीके लिये यह असह्य था, उनके हृदयमें असूया उत्पन्न हुई और उन्होंने अनसूयाको नीचा दिखानेका निर्णय किया । देवर्षि नारदने इसी प्रकार सती पार्वती और सरस्वतीके मनमें भी अनसूयाके पातिव्रत्यकी चर्चासे असूया उत्पन्न कर दी । सभी देवियाँ अपने-अपने पतिके सम्मुख मुँह फुलाकर बैठ गयीं और प्रतिज्ञा करानेके बाद यह सूचना दीं कि 'अनसूया देवीका सतीत्व भङ्ग करना है ।' देवोंने कहा—'अनसूया देवीका पातिव्रत्य भङ्ग करना हमलोगोंकी शक्तिसे परे है ।' उन लोगोंने समझा—'नारदकी तुमड़िया बज चुकी है, अब इस बीजको तो अङ्कुरित होना ही है ।' इन लोगोंने कहा—'देवि! प्रयत्न करूँगा, अब चरणोंको छोड़ दो ।'

मन्दाकिनीके तटपर तीनों देव अत्रिके आश्रममें पहुँचे । एकने दूसरेको अपने आगमनका कारण बताया । तीनों साधुवेषसे अनसूयाके समीप पहुँचे । मुनियोंके स्वागतके लिये अनसूयाने पाद्य-अर्घ्य-आचमनीय देकर कन्दमूल समर्पित किया; किंतु देवोंने आतिथ्य स्वीकार नहीं किया । अनसूयाने विनीत-भावसे पूछा—'मुनिगण! कौन-सा अपराध हो गया है, जो आपलोग मेरी पूजा ग्रहण नहीं कर रहे हैं ।' मुनिगण बोले—'आप हमारी प्रतिज्ञा स्वीकार करें तब हमलोग अन्न-जल स्वीकार करेंगे ।' अनसूयाने कहा—'अतिथि-सत्कार प्राणोंका बलिदान देकर भी किया जाता है । अतः मैं वही करूँगी जैसे आप प्रसन्न हों ।' मुनियोंने कहा—'आप विवस्त्र होकर हमारा आतिथ्य करें ।' वे अवाक् थीं । ध्यान लगाकर उन्होंने रहस्य जान लिया और कहा—'मैं विवस्त्र होकर आपका सत्कार करूँगी । यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ, भूलसे भी, स्वप्नमें भी, पर-पुरुषका ध्यान न किया हो तो आप तीनों छः महीनेके शिशु हो जायँ ।' इतना कहते ही वे छः महीनेके बालक होकर बालवत् रोने लगे । माताने विवस्त्र होकर स्तन-पान कराया । महामुनि अत्रि भी आ गये और सुकुमार, अभिराम बच्चोंको देखकर आश्चर्यचकित हो पूछे—'देवि! देवस्वरूप कमनीय ये तीनों बच्चे किसके हैं?' देवीने कहा—'भगवन्! ये आपके ही बच्चे हैं । भगवान्ने स्वतः कृपा की है ।' महर्षि समाधिके द्वारा रहस्यको जानकर अतिशय आनन्दित हुए । तीनों माँकी गोदमें खेलते और माँसे क्रीडाएँ करते थे । दिन-प्रति-दिन बीतने लगे । मास बीता, वर्ष बीता । तीनों देवियाँ घबरा गयीं कि पतिदेव कहाँ चले गये । वे घरसे निकल पड़ीं और मन्दाकिनीके तटपर पहुँच गयीं । तीनों देवियाँ नारदपर क्रुद्ध थीं । इसी बीच 'नारायण'की ध्वनिके साथ नारद उपस्थित हो गये । देवियोंने किसी तरह नारदको रोका और विनयके साथ पूछा—'तीनों देवता कहाँ चले गये?' नारदने अँगुलीके संकेतसे बताया— 'देखो-देखो, वे अनसूयाकी गोदमें खेल रहे हैं ।' तीनोंने अतिशय नम्रतासे कहा—'नारद! मैं इस आश्रममें जाना चाहती हूँ, अनसूया अप्रसन्न तो नहीं होंगी?' नारदने कहा—'अरे! देखती नहीं कि तुम्हारे पतिदेव बच्चे बने हुए किलकिला रहे

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। सती जहाँ बैठाती हैं, वहाँ बैठते हैं; जहाँ लिटाती हैं, वहाँ लेटते हैं; अब जाओ, पतिकी आशा छोड़ो, राम-राम जपो।' देवियोंने कहा—'नारद! अनसूयासे बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं है। हमलोग इसे मानती हैं। अब किसी गुणवान्‌के प्रति असूया (ईर्ष्या-डाह) नहीं करेंगी।' नारदने कहा—'तुमलोग सतीकी शरणमें जाओ, कल्याण होगा।' तीनोंने तीनों बच्चोंको देखा। वे सतीके वशमें थे, अतः बिना उनकी इच्छाके कहीं जा नहीं सकते थे। वे भी भयभीत होकर घरके अंदर जानेका साहस नहीं कर रही थीं।

इसी बीच अनसूया मन्दाकिनीमें स्नानकर गीले वस्त्रोंरो अंदर गयीं तो तीनों देवियोंने कुटीके द्वारपर खड़ी होकर कहा—'माताजी! हम भीतर आयें?' अनसूयाने पूछा—'तुमलोग कौन हो?' उन्होंने कहा—'हम आपकी पुत्रवधू हैं।' अनसूयाने कहा—'बहुओंको घरमें आनेके लिये क्या पूछना, तुम्हारा ही घर है, चली आओ।' लज्जासे नम्रमुखी होकर तीनोंने प्रवेश किया और अनसूयाके पैर छुए। माताने कहा—'मेरे बच्चे तो बहुत छोटे-छोटे हैं, किंतु बहुएँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं।' इतनेमें अत्रि आ गये। वे तीनों घूँघट डालकर एक ओर बैठ गयीं। महर्षिने पूछा—'देवि! ये तीनों कौन हैं?' देवीने कहा—'ये आपकी पुत्रवधू हैं।' 'देवि! तुम तो बड़ा कौतुक करती हो, अभी-अभी पुत्र बना लिया और छः महीने भी नहीं हुए कि इतनी बड़ी-बड़ी बहुएँ आ गयीं'—अत्रिने आश्चर्यपूर्वक कहा। तीनोंने सतीके पैर पकड़े और कहा—'देवि! क्षमा करें, हमारे पतिको प्रदान करें।' अनसूयाने कहा—'मैं कब मना कर रही हूँ, गोदीमें उठाकर ले जाओ।' तब तीनोंने प्रार्थना की—'माँ! अधिक लज्जित न करें।' यह सुनकर देवीका हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने पुनः पातिव्रत्यधर्मके बलसे उन्हें यथावत् कर दिया। अनसूयाने उठकर तीनों देवोंकी वन्दना की, पूजन किया और प्रदक्षिणा की। देवताओंने कहा—'पतिव्रते! हम तुम्हारे पातिव्रत्यसे संतुष्ट हैं, वर माँगो।' माता अनसूयाने कहा—'आप मेरे पुत्र हो जायँ।' तीनोंने 'तथास्तु' कहा। यही देव बादमें पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए।

पतिको परमेश्वर मानकर अपनी समस्त इच्छाओंको पतिकी इच्छामें विलीन कर जो नारियाँ जीवनयापन करती हैं, उनके लिये संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं है। इसी देवीके प्रभावसे पतिव्रता शाण्डिलीका चर्मरोग-ग्रस्त तथा दुष्ट पति जीवित हो गया था और केवल शाण्डिलीके पातिव्रत्यसे सूर्योदय न होनेके कारण जो संसारमें भीषण स्थिति उत्पन्न हो गयी थी, वह दूर हो गयी थी। स्त्रियोंके लिये पतिकी इच्छाके विरुद्ध पृथक् यज्ञ, श्राद्ध या उपवास करनेका विधान नहीं है। वे पतिकी सेवामात्रसे ही सब कुछ प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रीके लिये पति ही परम गति है। पतिके द्वारा किये हुए शुभानुष्ठानका आधा भाग अनन्यचित्तसे सेवा करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है।

सती अनसूयाने सीताजीको जिस शिक्षाका उपदेश दिया है, वह प्रत्येक नारीके लिये अनुकरणीय है। सती अनसूयाने कहा—'सीते! तुम्हारे स्वामी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे, जिन स्त्रियोंको पति प्रिय होते हैं, उन्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभावका मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाववाली नारियोंके लिये श्रेष्ठ देवताके समान है।'—

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥

(वा० रा० अयो० ११७। २३-२४)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गान्धारी

भारतके इतिहासमें ऐसी नारियाँ हो चुकी हैं, जिन्होंने अपने उदात्त चरित्र तथा महनीय गुणोंके द्वारा मानव-समाजको शिक्षा प्रदान की है। इन नारियोंके नाममात्र श्रवण करनेपर ही अनायास श्रद्धाका भाव जग पड़ता है। विश्वके मानस-पटलपर भारतको गौरवान्वित करनेमें भारतीय महिलाओंका अभूतपूर्व योगदान है। इन्हीं महिलाओंमें त्यागकी तपोमयी मूर्ति देवी गान्धारीके विलक्षण व्यक्तित्वका किंचित् आकलन यहाँ किया जा रहा है।

महाभारतके आरम्भमें ही महर्षि वेदव्यासने स्पष्ट उद्घोष किया है—

विस्तरं कुरुवंशस्य गान्धार्या धर्मशीलताम्।
क्षत्तुः प्रज्ञां धृतिं कुन्त्याः सम्यग्द्वैपायनोऽब्रवीत्॥

(महा०आदि० १।९९)

अर्थात् इस महाभारत नामक ग्रन्थमें मुख्य रूपसे कुरुवंशका वंश-विस्तार, गान्धारीकी धर्मशीलता, विदुरकी प्रतिभा तथा कुन्तीका धैर्य—ये विषय अत्यन्त महत्त्वके हैं और इनका वर्णन विशेषरूपसे किया गया है।

इस श्लोकसे यह स्पष्ट होता है कि देवी गान्धारी अपनी धर्मशीलताके लिये विख्यात हैं। गान्धारी राजवंशसे सम्बद्ध थीं। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, स्त्रीधर्म, राजधर्म तथा अध्यात्मतत्त्वका उन्हें समुचित परिज्ञान था। राजवंशसे सम्बद्ध होनेके कारण गान्धारीका राजनीति-विद्यापर भी असाधारण अधिकार था। कौरवों तथा पाण्डवोंके प्रति उनके कर्तव्याकर्तव्यके उपदेशका उल्लेख महाभारतमें पर्याप्त मिलता है। गान्धारी महापतिव्रता थीं। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरे पति अन्धे हैं तो उन्होंने भी अपने नेत्रोंको व्यर्थ ही समझा और निश्चय किया कि 'मैं जिनकी धर्मपत्नी होने जा रही हूँ, यदि वे नेत्रहीन हैं, तो मैं इस संसारको इन आँखोंसे नहीं देखूँगी।' अतः उन्होंने अपनी आँखोंपर पट्टी बाँधकर सर्वदाके लिये अपनेको भी अन्धा बना लिया (महा०आदि० १०३।१३)। धन्य है देवी गान्धारीका त्याग और उनकी पतिपरायणता।

महाभारतके उद्योगपर्वके १२९वें अध्यायमें महारानी गान्धारीकी शिक्षाका विशद वर्णन मिलता है। श्रीकृष्णने कौरवोंकी विशाल सभामें दुर्योधनके सम्मुख संधिका प्रस्ताव रखा, जिसे सुनकर दुर्योधन उठकर चला गया। धृतराष्ट्र अत्यन्त चिन्तित हुए, उन्होंने गान्धारीको सभामें बुलानेके लिये महामति विदुरको भेजा। धृतराष्ट्रने सोचा कि हो सकता है अपनी माता गान्धारीके सत्परामर्शसे दुर्योधन संधिकी शर्त मान ले। गान्धारी सभामें आयीं, किंतु उन्होंने अपने पुत्रके अनीतिपूर्ण व्यवहारका समर्थन नहीं किया। पुत्र होते हुए भी गान्धारीने उसका पक्ष नहीं लिया। यह थी गान्धारीकी उदात्त शिक्षा। वे धृतराष्ट्रको बहुत फटकारती हुई कहती हैं—'महाराज! दुर्योधनके जन्म-समय पुरोहितोंने तथा मैंने भी इसका परित्याग कर देनेके लिये कहा था; किंतु आपने उसकी दुर्बुद्धिका अनुवर्तन किया था। आज तो वह समर्थ हो चुका है, राजा है, अब उसे दुष्कर्मोंसे हटाना सम्भव नहीं है।' उन्होंने दुर्योधनसे कहा—'दुर्योधन! श्रीकृष्णने संधिकी जो शर्तें तुम्हारे सामने रखी हैं उन्हें यदि तुम स्वीकार कर लेते हो तो मैं, भीष्म, द्रोण, महाराज धृतराष्ट्र सभी आनन्दित एवं सम्मानित होंगे। काम और क्रोधके वशीभूत होनेपर राजा और प्रजा दोनोंका विनाश हो जाता है। जो लोग प्रभुत्व या आधिपत्य चाहते हैं, उन्हें सबसे पहले काम और अर्थके विषयमें इन्द्रियोंको संयत करना आवश्यक है। अजितेन्द्रिय राजा निर्बुद्धि होता है। यदि तुम पाण्डवोंसे मेल कर लेते हो तो पृथ्वीपर चिरकालतक सुख-भोग करोगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन सर्वथा अजेय हैं, यह बात भीष्म और द्रोण कई बार कह चुके हैं; क्योंकि वे धर्मके अनुयायी हैं, सत्य-मार्गके राही हैं। दुर्योधन! केवल क्रोधके वश हो कुरुवंशका विनाश मत कर। अरे पुत्र! तू क्रोधके वशीभूत हो इस पृथ्वीका संहार मत कर। तेरे कारण पृथ्वी नष्ट न हो, इस विषयपर विचार कर।'

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके साथ ही गान्धारीने उस विशाल सभामें अपना धर्म-निर्णय दिया—'इस सभामें जो समस्त राजगण, ब्रह्मर्षिगण एवं अन्यान्य सभासद्गण इकट्ठे हुए हैं वे सब मेरी बातें ध्यानसे सुनें—यह दुर्योधन अपने अनुयायी राजाओंके साथ बड़ा भारी पाप-कर्म करनेके लिये उद्यत है। हमारे कुरुवंशमें यही कुलधर्म है कि जो बड़ा होता है वही राजा होता है। यह नृशंसकर्मा दुर्योधन दुर्नीतिपरायण हो इस कुलधर्मको नष्ट करना चाहता है। जबतक महाराज धृतराष्ट्र एवं उनके छोटे भाई दीर्घदर्शी विदुर जीवित हैं, तबतक इन दोनोंका उल्लङ्घन कर दुर्योधन किसी भी तरह राजा नहीं हो सकता। राजा धृतराष्ट्र एवं विदुर—इन दोनोंको भी भीष्मके जीवित रहते राज्यका अधिकार नहीं है। महात्मा भीष्मने राज्य करना नहीं चाहा, इसी कारण धृतराष्ट्र राजा हुए हैं। वास्तविक रूपसे धृतराष्ट्र राजा नहीं हैं। इस राज्यके राजा थे महाराज पाण्डु। इसलिये पाण्डुके पुत्रोंका ही इस राज्यपर अधिकार है। पिताके राज्यपर पुत्रोंका एवं पितामहके राज्यपर पौत्रोंका अधिकार होता है। सुतरां सारा राज्य ही पाण्डवोंका है, इस राज्यपर दुर्योधनका कोई अधिकार नहीं है। अतः इस विशाल कुरुराज्यका शासन युधिष्ठिर ही करें। भीष्म और धृतराष्ट्र राजा युधिष्ठिरके उपदेष्टाके रूपमें रहें।'

यह थी देवी गान्धारीकी निष्पक्ष धर्मनीति। इसीलिये तो व्यासदेवने गान्धारीको धर्मकी प्रतिमूर्ति बतलाया है। गान्धारीद्वारा निर्दिष्ट मार्ग और उनके उपदेश श्रेयस्कर, अनुकरणीय तथा आदर्श हैं।

गान्धारीने अपने पुत्रों तथा धृतराष्ट्रको समझाया, किंतु दुर्योधन न मांना। फलस्वरूप महाभारतका विनाशकारी युद्ध हुआ। युद्धमें विजयी पाण्डव कौरवोंके विनाशके बाद गान्धारीके पास जानेका साहस न कर पाये। श्रीकृष्णने गान्धारीके क्रोधको शान्त किया। व्यासने गान्धारीसे कहा—'देवि! जब पाण्डव तुम्हें प्रणाम करने आते थे, तब तुमने सदा उन्हें यही सीख और उपदेश दिया था कि जहाँ धर्मका तथा सत्यका मार्ग है, वहीं विजय होती है, फिर आज जब असत्यपर सत्यकी, दुर्नीतिपर सन्नीतिकी तथा अधर्मपर धर्मकी विजय हुई तब ऐसे अवसरपर तुम्हारा कोप करना सर्वथा व्यर्थ है; क्योंकि तुम धर्मनीतिकी प्रतिमूर्ति हो।' गान्धारी शान्त हुईं, तथापि उन्होंने भीमको दुर्योधन तथा दुःशासनको कपटपूर्ण व्यवहारसे मारनेके लिये फटकारा। भीमने क्षमा-याचना की। रणक्षेत्रमें गान्धारीने अपने पुत्रोंकी दुर्दशा देखी और श्रीकृष्णको वंश-क्षय हो जानेका शाप दे दिया (महा॰स्त्री॰२६।४१-४३)। भारतके इतिहासमें गान्धारीकी वीरगाथा तथा धर्मनीति नारी-जगत्के लिये शिक्षाप्रद है।

राजमाता कुन्ती

भारतीय आदर्श नारियोंमें कुन्तीका नाम अत्यन्त आदरके साथ लिया जाता है। कुन्ती यदुवंशी शूरसेनकी पुत्री थीं। शूरसेनने अपने फुफेरे भाई कुन्तिभोजसे प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी पहली संतान आपको भेंट कर दूँगा, अतः कुन्तीका लालन-पालन राजा कुन्तिभोजने किया इसीसे वे कुन्ती कहलायीं। उनका पहला नाम पृथा था।

कुन्तीने महर्षि दुर्वासाको अपनी सेवासे प्रसन्न किया। दुर्वासाने कुन्तीको अथर्वशिरस्-मन्त्रका उपदेश दिया। इसी मन्त्रकी शिक्षा कुन्तीने माद्रीको दी थी (आरण्यक २८९।२० आदि॰ ११३।३४, ११५।१५)। इस मन्त्रके प्रभावसे कुन्ती किसी भी देवताका आवाहन कर पुत्र प्राप्त करनेमें समर्थ हो गयीं। मन्त्रकी परीक्षाके लिये कुमारी-अवस्थामें ही कुन्तीने सूर्यदेवका आवाहन किया। फलतः उन्हें कर्ण नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जो जन्मसे ही कवच-कुण्डल धारण किये हुए था।

कुन्तीके युवा होनेपर राजा कुन्तिभोजने इनके विवाहके लिये स्वयंवरका आयोजन किया, जिसमें बड़े-बड़े राजा उपस्थित हुए। कुन्तीने पाण्डुका वरण किया। पाण्डु कुन्तीको लेकर हस्तिनापुर आये। पाण्डुका द्वितीय विवाह माद्रीके साथ सम्पन्न हुआ।

पितृ-ऋणसे उद्धारके लिये पाण्डुने पुत्र-कामना व्यक्त की। कुन्तीने दुर्वासाद्वारा प्रदत्त मन्त्रका स्मरण करके उसके प्रभावसे देवत्वशक्ति-सम्पन्न पुत्र उत्पन्न करनेका निश्चय किया। मन्त्रका जपकर कुन्तीने धर्म, वायु और

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्र—इन तीन देवताओंका आवाहन किया। फलतः तीन पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मके अवतार धर्मराज युधिष्ठिर, वायुके अवतार भीम तथा इन्द्रके अवतार अर्जुन हुए।

इसी मन्त्रसे माद्रीने अश्विनीकुमारोंका ध्यान कर नकुल तथा सहदेवको प्राप्त किया। ये पाँचों पाण्डुके क्षेत्रसे उत्पन्न होनेके कारण पाण्डव कहलाये।

पाण्डवोंका कौरवोंके साथ युद्ध हुआ। पाण्डव विजयी हुए। अन्तमें कुन्तीने धृतराष्ट्र तथा गान्धारीके साथ उनकी सेवाके लिये वन-प्रस्थान किया। युधिष्ठिरने बहुत रोका, किंतु कुन्ती रुकीं नहीं। अरण्यकी दावाग्निमें धृतराष्ट्र तथा गान्धारीके साथ कुन्तीने भी अग्निप्रवेश किया (भाग० ९।२२।२७, मत्स्य०५०।४८।५०, महा० आदि० ११०-११३, उद्योगपर्व तथा आश्रमवासिक पर्व आदि)।

कुन्ती अपनी धीरता, पातिव्रत-धर्म, अतिथिसेवा, गुरु-शुश्रूषाके लिये विख्यात हैं। वे श्रीकृष्णकी परम भक्त थीं और भगवान्से उन्होंने यही माँगा था कि यावज्जीवन मैं कष्टमें ही रहूँ; क्योंकि कष्टमें ही भगवान् याद आते हैं। सुख रहनेपर भूल जाते हैं। आदर्श माता तथा वात्सल्य, कर्तव्यनिष्ठा, उदारता आदि सद्‌गुणोंको कुन्तीने न केवल अपने उपदेशोंके माध्यमसे बतलाया; अपितु इन उदात्त भावनाओंको अपने आचरणसे भारतीय नारीके सामने प्रस्तुत किया। कुन्तीके आदर्श चरित्रके प्रति नारी-जगत्‌की कर्तव्य-पूर्ति तबतक नहीं हो सकती जबतक कि उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण न किया जाय। सचमुच कुन्तीका चरित्र शिक्षाप्रद, प्रशंसनीय और वन्दनीय है। वह नारी-समाजका गौरव है। अद्वितीय व्यक्तित्वके कारण वे प्रातः-स्मरणीय हो गयीं। यथा—

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥

श्रीगुरु नानकदेवके सार्वकालिक शिक्षा-सिद्धान्त

(डॉ० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पी० ई० एस्०)

शिष्यका स्वरूप

श्रीगुरु नानकदेव सिक्खमतके प्रवर्तक थे। उन्होंने परम्परागत शिक्षा-प्रणालीको इतना प्रश्रय नहीं दिया, जितना कि शब्द-ज्ञानको। जीवनविषयक स्वानुभूति और अन्तर्दृष्टिसे ही वे परम ज्ञानी बन गये और उन्होंने अपने अनुयायियोंको 'सिक्ख'की संज्ञासे अभिहित किया। 'शिष्य' शब्दके अपभ्रंश-रूप 'सिक्ख'की अभिधासे वही व्यक्ति विभूषित हो सकता है, जो गुरुके कथनपर विचारपूर्वक मनन करता है और उनकी कृपासे अपने जीवनकार्यकी पूर्तिमें सफल उतरता है। वास्तवमें सच्चे शिक्षार्थी (सिक्ख)-की कितनी सटीक परिभाषा निम्नाङ्कित पदमें मिलती है—

सिखी सिखिया गुर वीचारि। नदरी करमि लघाए पारि॥
(आसाकी वार, पृष्ठ ४६५)

भले ही गुरु नानकदेवने एक निश्चित स्थानपर किसी पाठशालामें बैठकर अपने शिष्योंको पुस्तक-ज्ञान प्रदान नहीं किया, फिर भी स्वतन्त्रचेता गुरु साहबने कहीं प्रत्यक्ष-रूपमें अथवा कहीं प्रतीकोंके माध्यमसे शिक्षा-पद्धतिके सभी मूल तत्त्वोंको अपनी मनोहर वाणीमें सँजो दिया है, जिनका विवरण इस प्रकार है—

पाधा—गुरु साहबने शिक्षकके लिये 'पाधा' शब्दका प्रयोग किया है, जो 'उपाध्याय' शब्दका विकृत रूप है। उनका मत है कि एक उत्तम अध्यापक वही बन सकता है, जो शान्त-चित्त होकर अध्ययन कर सके और विद्योचित सभी तत्त्वोंका सार अपने शिक्षार्थियोंको सम्प्रेषित करनेमें सक्षम हो। इस प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न शिक्षकका ज्ञान-दान ही छात्रोंके लिये उपयोगी हो सकता है, यथा—

पांधा पड़िआ आखीऐ बिदिआ बिचरै सहिज सुभाइ।
बिदिआ सोधै ततु लहै राम नाम लिव लाइ॥
पांधा गुरमुखि आखीऐ-चाटड़िआ मति देइ।
नाम समालहु नामु संगरहु लाहा जग महि लेइ॥

(रामकली ओंकार, पृष्ठ ४३७-३८)

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गुरु-शिष्यका भाव-सामञ्जस्य

गुरु और शिष्यमें भाव-सामञ्जस्य होना अनिवार्य है। यदि गुरुमें सम्प्रेषण-शक्ति न हो तो शिष्यमें ग्रहण-शक्ति नहीं आ सकती। इस प्रकार विचारोंका आदान-प्रदान न होनेपर अध्यापकका विद्या-दान एवं शिष्यका परिश्रम निरर्थक जाता है। इसीलिये गुरु नानकदेवने आमने-सामने बैठकर गुरु और शिष्यके सम्बन्धको दृढ बनानेपर बल दिया है। इसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर उन्होंने गुरु और शिष्य दोनोंके लिये 'गुरमख' (गुरु-मुख=गुरुकी ओर मुँह करके बैठनेवाला) शब्दका प्रयोग किया है। गुरु भी तो पहले किसीका शिष्य रहा होगा और उसी उन्मुखतासे ज्ञानार्जित करके विद्यादानमें तत्पर हुआ होगा। इसी संदर्भमें गुरु नानकदेव 'गुरमख'के गुणोंका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

(१) गुरमुखि बूझै आपु पछाणै सचे सचि समाए।

× × ×

मनमुख खोइआः गुरमुखि लाधा। (सिध गोसटि)

(२) गुरबचनी मन बेचिआ सबदि मन धीरा॥ (मारू राग)

दृश्य-श्रव्य-प्रणाली

'गुरमख' शब्द वास्तवमें आधुनिक शिक्षा-विधिकी दृश्य-श्रव्य प्रणालीकी ओर इंगित करता है। प्रभुकी लीलाके अनेक रूपोंका रसास्वादन करनेके लिये गुरु नानकदेवने अपनी वाणीको विविध राग-रागिनियोंके माध्यमसे व्यक्त किया। जिसके फलस्वरूप 'शब्द-कीर्तन' सिक्ख-समाजका एक आवश्यक अङ्ग बन गया है। उन्होंने अपार ब्रह्मके स्वरूपको भी बड़ी चित्रमयी भाषामें तथा अद्भुत ढंगसे दर्शाया है, यथा—

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती।
अनहता सबद वाजँत भेरी॥

× × ×

हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो
अनदिनो मोहि आही-पिआसा।
कृपा जलु देहि नानक सारिंग कउ
होइ जाते तैरै नाभि वासा॥

(धनासरी राग, आरती, पृष्ठ ६६३)

लेखन-विधि

पुराने समयमें छात्रोंको 'तख्ती' पर अक्षर-ज्ञान करवाया जाता था। प्रतिदिन 'काष्ठ-पट'पर कलमसे लिखनेपर बालकका हस्तलेख सुन्दर बन जाता था। पंजाबी भाषामें 'तख्ती'को 'फट्टी' अथवा 'पट्टी' कहा जाता है। गुरु साहबने 'पट्टी' प्रतीकके द्वारा अपने आध्यात्मिक ज्ञानको अभिव्यक्त किया है। 'पट्टी'के अन्तर्गत अकारादि-क्रमसे गुरमतिकी महिमाका संचार भक्तजनोंमें किया गया है। 'ह' अक्षरको आधार बनाकर उनका कथन है—

हाहै होरु न कोई दाता,
जीअ उपाइ जिनि रिजकु दीआ।
हरिनामु धिआवहु हरि नामि समावहु,
अनुदिन लाहा हरि नामु लीआ॥

(राग आसा, पट्टी, पृष्ठ ४३४)

गुरु साहबने अन्यत्र भी इस बातका संकेत किया है कि सच्चे भक्तरूपी शिष्यके लिये परम्परागत अक्षरज्ञान तो एक निमित्त मात्र है। वास्तवमें उसे तो अपने निर्मल चित्तपर आध्यात्मिक अक्षरों एवं शब्दोंसे समन्वित ज्ञानको अङ्कित करना चाहिये, यथा—

सची पटी सचु मनि पड़ीऐ सबद सु सारु।
नानक सो पड़िया सो पंडितु बीना॥
जिस राम नामु गलि हारु॥

(दक्खनी ओंकार, पृष्ठ ९३८)

विद्या-प्राप्तिका लक्ष्य

अक्षर-ज्ञानसे पाण्डित्य प्राप्त करके अथवा पुस्तक-भण्डारके अध्ययनसे मेधावी या विचक्षण कहलाना ही सच्ची शिक्षाका मनोरथ नहीं है। एक सच्चे 'सिक्ख' (शिष्य) के विद्या-अध्ययनका मन्तव्य तो अनेक सद्गुणोंके संग्रहमें निहित है। भक्ति-परक शिक्षामे ही नहीं, प्रत्युत साधारण छात्र-जीवनमें भी निम्नलिखित विशेषताओंको अर्जित करना अनिवार्य ठहराया गया है। यथा—

(१) परोपकारकी भावना—शिक्षा-प्राप्तिका एक आवश्यक गुण है सर्वहित-चिन्तन। गुरमति सदा 'सरबत के भले' पर जोर देता है। गुरु साहब कहते हैं—

विदिआ वीचारी तां परउपकारी।
जाँ पंच रासी तां तीरथ वासी।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

× × ×

दइआ दिगंबरु देह बिचारी।
आप मरै अवरा नह मारी॥

(राग आसा, पृष्ठ ३५६)

(२) नम्रता—विद्या-प्राप्तिसे मनुष्यके मनमें किसी भी प्रकारका अहंकार नहीं आना चाहिये। विनम्रता ही अभिमानके दमनमें सहायक हो सकती है। इसीलिये भारतीय मनीषियोंने विद्यार्जनका सर्वश्रेष्ठ फल 'विनय'को ही बताया है, जो **'विद्या ददाति विनयम्'**—सूक्तिसे विदित होता है। गुरु नानकदेव भी 'हउमै' (अहंमन्यता) का नाश करनेके लिये अपने सिक्खों (शिक्षार्थियों) को समझाते हैं—भले ही महीनों पढ़ो अथवा वर्षोंतक। चाहे पढ़ते-पढ़ते सारी आयु बीत जाय, किंतु एक बात ध्यान देने योग्य है कि 'अभिमान' आ जानेपर सारा ज्ञानार्जन केवल 'झख मारना' कहलाने लगता है। यथा—

पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास।
नानक लेखै इक गल होरु हउमें झखणा झाख॥

(आसाकी वार, पृष्ठ ४६७)

आदर्श अध्यापक

संतुलित बुद्धि—सच्चा अध्यापक वही है जो स्वयं इन्हीं गुणोंसे सम्पन्न हो। आदर्श अध्यापक वही हो सकता है, जिसकी कथनी और करनीमें अन्तर न हो। गुरु नानकदेवजीके जीवन-वृत्तान्तमें एक ऐसा ही प्रसंग मिलता है। जब आप धर्म-प्रचारके लिये मुलतान आये तो वहाँके धर्म-प्रेमियोंने उनका स्वागत दूधभरे प्यालेसे किया। यह प्याला इस बातका प्रतीक था कि वहाँकी जनता पहले ही इतने उपदेश सुन चुकी है कि अब उन्हें और कुछ सुननेकी गुंजाइश नहीं है। गुरु नानक मानव-प्रकृतिके सूक्ष्म ज्ञाता थे। उन्होंने तुरंत चमेलीका एक फूल तोड़कर दूधभरे प्यालेपर रख दिया और स्वागतकर्ताओंके हवाले कर दिया। मुलतानवासी गुरु नानकदेवके इस व्यवहारसे बड़े प्रसन्न हुए; क्योंकि उन्होंने विनम्रतापूर्वक इस बातका संकेत कर दिया था कि वह वहाँ कुछ लेने नहीं, प्रत्युत देने आये हैं और वह है फूल-जैसी सुगंध। वह फूल जो दूसरोंके लिये सर्वस्व त्याग देता है। इस घटनासे यही शिक्षा मिलती है कि जो अध्यापक विकट परिस्थितियोंमें भी अपना मानसिक संतुलन नहीं खोता वह दूसरोंके मनको सरलतासे जीत लेता है।

जागरूक व्यक्ति

उपर्युक्त घटनासे इस बातका सही प्रमाण मिल जाता है कि गुरु नानकदेव तर्कशील स्थितिसे किस प्रकार निपट लेते थे। एक सच्चा अध्यापक अपने छात्रोंसे अपनी बात ही नहीं मनवाता, प्रत्युत उन्हें तर्क-वितर्कके लिये भी तैयार कर लेता है। ज्ञानका कोई अन्त नहीं है—इसीलिये गुरु भी शिक्षार्थीसे जीवनभर कुछ सीखता रहता है। इस प्रकारके उदार-चित्त अध्यापकको ही 'सजग-व्यक्ति' कहा जा सकता है। गुरु नानकदेवने अपने पैरोकारोंको इन्हीं गुणोंका संचय करके 'सिक्ख' (जो सदा सीखता रहे) शब्दकी उपयुक्तता दर्शानेके लिये बड़ी विनम्रतापूर्वक प्रेरित किया है—

प्रणवति नानक गिआनी कैसा होइ?
आपु पछाणै बूझै सोइ।
गुर परसादि करे बीचारु
सो गिआनी दरगहि परवाणु॥

(सिरी राग, पृष्ठ २५)

महामना मालवीयजीकी शिक्षा और राष्ट्रवादकी अवधारणा

(श्रीकृष्णदत्तजी द्विवेदी)

मालवीयजीका जीवन-दर्शन स्वयमेव रचनात्मक तथा अर्थपरक था। वे लघुसे विराट्के तथा व्यष्टि-समष्टिमें एकाकार करनेके पक्षधर थे। उनका विचार था कि व्यक्तिका समाजमें, व्यष्टिका समष्टिमें, आत्माका परमात्मामें, परमाणुका अणुमें अस्तित्व दिखायी देता है। इसी सिद्धान्तको वे राष्ट्र और समाजमें भी प्रतिपादित करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने कहा था कि 'घरमें हमारा धर्म ब्राह्मण-धर्म, परिवारमें सनातन-धर्म, समाजमें

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिंदू-धर्म, देशमें स्वराज्य-धर्म, विश्वमें मानव-धर्म है।' प्रायः देखा जाता है कि विराट् स्तरपर पहुँचनेपर वे सम्पूर्ण समाजसे एकीकरण कर लेते हैं और विराट् स्वरूप-दर्शनमें अपने अहंका लोप करते हुए मात्र 'मानव'-धर्मका स्वरूप दिखलाते हैं।

महामनाके अनुसार वर्तमान शिक्षा-प्रणाली जड़से ही दोषयुक्त है और इसमें आमूल सुधारकी आवश्यकता है, जो किसी एकाकी व्यक्तिकी सामर्थ्यकी बात नहीं है। इसके लिये सामूहिक तथा राजकीय प्रयासकी आवश्यकता है। नौकरी तथा शिक्षाके माध्यमके विषयमें महामनाने प्रकाश डालते हुए कहा था—'भारतीय विद्यार्थियोंके मार्गमें अनेक बाधाएँ हैं। उनके मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंका कोई अन्त नहीं है। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यहाँ शिक्षा तथा नौकरीका माध्यम दुरूह विदेशी भाषा है। संसारमें कहीं भी शिक्षा तथा नौकरीका माध्यम विदेशी भाषा नहीं है। फलस्वरूप मातृभाषापर कम ध्यान दिया जाता है। सात वर्षकी अवस्थासे ही बालक अपने अध्ययनका बहुमूल्य समय विदेशी भाषाके रटनेमें लगा देते हैं, जिससे वे अपनी भाषासे भी अनभिज्ञ रह जाते हैं।' अतः महामना चाहते थे कि विश्वके अन्य देशोंकी भाँति शिक्षा तथा अध्ययनकी माध्यम मातृभाषाएँ हों। उनके अनुसार भारतकी सभी भाषाएँ संस्कृतसे उत्पन्न हुई हैं और सबमें बड़ी समानता है। यहाँकी एक भाषा जाननेवाले व्यक्तिके लिये दूसरी भाषाका अध्ययन करना (दूसरी भाषा और शैलीके लिये अध्ययनकी भाँति) सरल है। अतः राष्ट्रिय एकताके लिये संस्कृतकी ज्येष्ठ पुत्री और बहुसंख्यक लोगोंद्वारा बोली और समझी जानेवाली भाषा हिंदीको राष्ट्रिय भाषाके रूपमें प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये।

कला-विज्ञान तथा अर्थकरी राष्ट्रिय शिक्षाकी अवधारणा

केवल कला-सम्बन्धी शिक्षा देनेसे ही किसी देशका हित नहीं हो सकता, अपितु विज्ञान और तकनीकीकी पिछली शताब्दियोंकी उन्नतिको देखते हुए इनकी शिक्षा देना परम आवश्यक है। महामनाके अनुसार सामाजिक विज्ञानोंकी शिक्षा व्यक्तिके सिरकी भाँति और प्राविधिक वैज्ञानिक शिक्षा धड़के समान है। दोनोंका समन्वय होना जीवनमें नितान्त आवश्यक है। वे चाहते थे कि माध्यमिक शिक्षा तकनीकी ज्ञान तथा उद्योग-धंधोंसे सम्बन्धित होनी चाहिये। उनका विचार था कि विद्यार्थियोंको इस योग्य बना देना चाहिये कि वे किसी-न-किसी उपायसे अपना जीविकोपार्जन कर सकें। माध्यमिक शिक्षा अन्य देशोंकी भाँति सफल तभी मानी जा सकती है जब वह विद्यार्थियोंको अर्थार्जन-योग्य बना सके। उनके अनुसार शिक्षा-प्रणालीका प्रधान ध्येय नवयुवकोंके चरित्र-निर्माणके साथ कुशल नागरिक बनाना होना चाहिये। शिक्षा ऐसी हो जो विद्यार्थियोंको विद्यालयके कमरोंसे कारखानोंतक कार्यनियोजित कर सके। देशमें कृषि, शिल्प, विज्ञान, वाणिज्य आदिका अधिकाधिक विकास किया जाना चाहिये।

राष्ट्रिय शिक्षा

महामनाने जोरदार शब्दोंमें कहा था कि हमारी सरकारसे यह माँग है कि प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय और एक नवीन कला, कृषि, शिल्प, विज्ञान, तकनीकी तथा व्यापार-सम्बन्धी शिक्षा-प्रणाली विकसित की जाय। उक्त शिक्षा-प्रणालीमें विकासके प्रसंगमें किसी देशकी राष्ट्रिय शिक्षाका प्रश्न देशकी सबसे बड़ी समस्या होती है। देशमें उक्त शिक्षाके विकासके साथ राष्ट्रियताकी शिक्षा अनिवार्य रूपसे दी जानी चाहिये, जिससे अन्य देशोंकी भाँति क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद तथा बहुधर्मवाद-वाले भारत देशमें सबसे ऊपर राष्ट्रिय चरित्रका विकास हो और देशमें एकता स्थापित हो।

राष्ट्रिय शिक्षाके विषयमें महामनाकी उक्त अवधारणा भारतके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है। महामनाकी दूरदृष्टिने इस प्रकारकी राष्ट्रिय शिक्षाकी कल्पना की थी जो देशको एक सूत्रमें बाँधनेके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है। स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें उनका विचार था कि स्त्रियाँ केवल रसोईघरकी शोभाकी वस्तु नहीं हैं। देशकी जनसंख्याके आधे भागका अशिक्षित होना अहितकर है। उनके अनुसार—'सभी प्रकारके मनुष्योंकी जन्मदात्री माँ होती है, अतः बालककी प्रारम्भिक शिक्षा माँसे आरम्भ

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती है। माँके समान कोई दूसरा शिक्षक नहीं है। देशको जिस दिशामें ले जाना हो, स्त्रियोंको उसी प्रकारकी शिक्षा दी जानी चाहिये। स्त्री-शिक्षाके व्यापक विकाससे ही देशके भावी सच्चरित्रवान् कर्णधारोंका सम्यक् निर्माण सम्भव है।'

बहु-भाषां, बहु-धर्म, बहु-जाति, बहु-सम्प्रदाय आदिवाले भारत देशके विकास और समृद्धिके लिये भारतका राष्ट्रके रूपमें एकजुट होना अत्यन्त आवश्यक है। महात्मा गाँधीके शब्दोंमें मालवीयजी 'महामानव' थे। उनकी दूरदृष्टि भारतीय राष्ट्रियताकी समस्याके सम्बन्धमें भी सजग थी। अतः भारत राष्ट्रके लिये महामनाके राष्ट्रवादके अनुसार शिक्षा-पद्धतिका विकास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

महर्षि पुलस्त्यकी सार्वजनीन शिक्षा

[गताङ्क पृ० ४१५ से आगे]

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

शास्त्रद्वारा पतिके कर्तव्यकी शिक्षा

उत्तानपादके पुत्रका नाम उत्तम था। उनकी माताका नाम सुरुचि था। वे बलवान् और पराक्रमी थे। वे धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करते थे। शत्रु और मित्रमें तथा प्रजा और पुत्रमें उनकी दृष्टि सम थी। दुष्टोंके लिये वे यमके समान उग्र और शिष्टोंके लिये चन्द्रमाके समान आह्लादक थे। उनका विवाह बभ्रुकी कन्या बहुलासे हुआ था। उत्तमका अपनी पत्नी बहुलापर अत्यधिक स्नेह था, किंतु बहुलामें प्रेमका अभाव था। वह सदाचारिणी, मृदुभाषिणी और रूपवती थी, किंतु हृदयहीन थी। राजा अपनी पत्नीके दर्शन और स्पर्शसे तन्मय हो जाते थे, किंतु बहुलाको यह नहीं सुहाता था। राजा जितना उसका सम्मान करते, उतना वह अपना अपमान समझती थी। राजाके सम्पर्कसे बहुलाको दुःखका अनुभव होता था। राजा अनुरक्त थे। इसलिये वे उसके प्रतिकूल बर्तावपर ध्यान नहीं देते थे।

एक बार एक समारोह था। उसमें देश-देशके राजा और सम्मानित जन उपस्थित थे। साथ ही बहुलाके साथ महाराज उत्तम भी विराजमान थे। संगीत चल रहा था। राजाने प्यारसे बहुलाको पेय पदार्थ दिया, किंतु उसने निष्ठुरताके साथ उसका निरादर कर दिया। इससे भरी सभामें राजाको अपमानका बोध हुआ। वे बहुलाके अप्रिय व्यवहारसे पहलेसे ही आहत होते आ रहे थे, परंतु आज अपनेको न सँभाल सके और क्रोधमें आकर उन्होंने बहुलाको जंगलमें छोड़वा दिया, किंतु बहुलाके प्रति जो उनका अनुराग था, वह वियोग पाकर और बढ़ने लगा। प्रजाके बहुत चाहनेपर भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। राजा धर्मज्ञ अवश्य थे, किंतु पतिका पत्नीके प्रति क्या कर्तव्य होता है, इस मर्मको वे न समझ पाये थे। एक अपराधीको दण्ड देना राजाका कर्तव्य है—ऐसा समझकर उन्होंने पत्नीको वनवासका दण्ड दे दिया था, किंतु धर्मके इस मर्मसे वे अनभिज्ञ थे कि पत्नीकी सर्वथा रक्षा करना पतिका प्रथम कर्तव्य होता है।

विरह-वेदनाकी अवस्थामें भी वे धर्मके किसी कृत्यको न छोड़कर धर्मानुसार प्रजाका पालन कर रहे थे। एक दिन एक ब्राह्मण उनके पास आया। उसने दुःखभरे शब्दोंमें महाराजसे निवेदन किया कि 'राजाके अतिरिक्त प्रजाका क्लेश और किसीसे निवारण नहीं हो सकता, अतः आप मेरे क्लेशको मिटाइये। वह कष्ट ऐसा है कि मैं रातमें सो रहा था, मेरे पास मेरी पत्नी भी थी।

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घरका दरवाजा बंद था। फिर भी द्वार बिना खोले ही किसीने मेरी भार्याका अपहरण कर लिया। आप मेरी पत्नीको ला दीजिये।' राजाने पूछा—'ब्रह्मन्! आपकी भार्याको किसने हरण किया है? और कहाँ रखा है?' ब्राह्मणने कहा—'यह तो मैं भी नहीं जानता कि चोर कौन है? और वह उसे हरकर कहाँ ले गया है? किंतु बंद द्वारसे हरण करना मनुष्यका काम नहीं है। इतना तो समझमें आता है। आप राजा हैं। प्रजाकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है। आपकी रक्षाकी व्यवस्थासे ही सब लोग निश्चिन्त होकर सोते हैं।'

राजाने पूछा—'मैंने आपकी भार्याको कभी देखा नहीं। उसका रूप-रंग तो बताइये। उसका आकार-प्रकार कैसा है? किस उम्रकी है? और कैसा स्वभाव है?' ब्राह्मणने कहा—'उसकी आँखें बड़ी कर्कश हैं, वह बहुत लंबी है, उसके हांथ छोटे-छोटे हैं और मुँह सूखा है। देखनेमें वह अत्यन्त कुरूप है।' ब्राह्मण फिर सँभलकर बोला—'किंतु राजन्! मैं ये बातें अपनी पत्नीकी निन्दाके रूपमें नहीं कह रहा हूँ। मैं तो उसका रूप-रंग बतला रहा हूँ। राजन्! उसके शब्द बड़े कठोर और स्वभाव बहुत ही कर्कश है। उसकी पहली अवस्था बीतनेपर आयी है।' राजा बोले—'ब्राह्मण! ऐसी कुलक्षणा भार्याकी आपको क्या आवश्यकता है? आपके सिरकी बला चली गयी, छोड़िये उसे। मैं आपके लिये अन्य भार्याकी व्यवस्था कर दूँगा; क्योंकि शुभलक्षणा भार्या सुखके लिये और कुलक्षणा भार्या पग-पगपर दुःखके लिये होती है। सौन्दर्य और सुन्दर स्वभाव—ये दोनों मङ्गलके तथा कुरूपता और दुःशीलता अमङ्गलके कारण हैं।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! श्रुतिने कहा है कि भार्याकी सर्वप्रकारसे रक्षा करनी चाहिये। वह मेरी भार्या बन चुकी है, इसलिये उसकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। अन्यथा मेरा धर्म नष्ट हो जायगा। विवाहिता स्त्रीको त्यागना अनुचित है, अतः आप मेरे धर्मकी रक्षाके लिये मेरी पत्नीको ला दीजिये।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाने समझ लिया कि कोई दिव्य जातिका व्यक्ति ही इनकी पत्नीका हरण कर सकता है। इसलिये वे जासूस-विभागपर ब्राह्मणीकी खोजका भार न सौंपकर स्वयं रथपर बैठकर किसी महात्माकी खोजमें चल पड़े। एक वनमें उन्होंने एक अग्निके समान तेजस्वी मुनिको देखा। वे उनके पास गये। मुनि राजाको पहचानते थे। उन्होंने सम्मानके साथ राजाका स्वागत किया और शिष्यसे कहा—'अर्घ्य लाओ।' शिष्यने मृदु स्वरसे प्रार्थना की कि 'महाराजको अर्घ्य देना उचित है या नहीं। यह विचारकर आप आज्ञा दें, मैं तुरंत पालन करूँगा।' शिष्यकी बात सुनकर मुनिने समस्त वृत्तान्त जान लिया। इसके बाद उन्होंने केवल मधुर सम्भाषण और आसन देकर राजाका सम्मान करते हुए कहा—'राजन्! मैं आपको जानता हूँ। आप राजर्षि उत्तानपादके पुत्र हैं। आप किस कामसे यहाँ आये हैं? यह बतलाइये।' राजाने कहा—'मेरे राज्यसे ब्राह्मणके घरसे उनकी भार्याको कोई अज्ञात शक्ति चुरा ले गयी। आप-जैसे त्रिकालदर्शी उसका पता दे सकते हैं। इसीलिये मैं आपकी सेवामें आया हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी एक और जिज्ञासा है कि आपने पहले मुझे अर्घ्य देनेकी बात कही थी, बादमें शिष्यके कहनेपर आपने मुझे अर्घ्य नहीं दिया। मुझसे ऐसा क्या अशास्त्रीय कार्य हो गया कि मैं इसके योग्य न रहा?'

ऋषिने कहा—'आप उत्तम वंशके धार्मिक राजा हैं। अर्घ्यके पात्र हैं। यह सोचकर मैंने बिना विचारे अर्घ्यके लिये शिष्यको आज्ञा दी थी। मेरा शिष्य भी मेरी तरह त्रिकालदर्शी हो गया है। उसने जान ली थी कि आपने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया है। ऐसा करना बहुत बड़ा पाप है, इसलिये आप अर्घ्यके योग्य नहीं रह गये हैं। शास्त्रका कहना है कि जिसने अपनी धर्मभार्याका त्याग कर दिया, उसने सारे धर्मोंका ही त्याग कर दिया। एक पक्षतक जिससे धर्म-क्रियाकी हानि हो जाय वह मनुष्य जनसमाजमें स्पर्श करने योग्य नहीं रहता। आपसे तो वर्षोंसे इस नित्य-क्रियाकी हानि हो रही है। आप धर्मकी क्रियाएँ करते तो सब हैं, किंतु धर्मभार्याके त्यागसे वे सब व्यर्थ हो गयी हैं। जिस प्रकार चरित्रभ्रष्ट पतिका भी अनुवर्तिनी होना पत्नीका कर्तव्य है, उसी तरह दुःशीला और विपरीत चलनेवाली

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पत्नीका भरण-पोषण-रक्षण करना पतिका भी कर्तव्य होता है। आप राजा हैं। आपको अपने धर्मसे विचलित नहीं होना चाहिये।'

राजाको अपनी भूल ज्ञात हुई। उन्होंने लज्जासे सिर झुकाकर अपनी भूल स्वीकार की। इस समय ब्राह्मणकी स्त्रीका पता लगाना उनका पहला कर्तव्य था, अतः उन्होंने ऋषिसे उसका विवरण पूछा। ऋषिने कहा—'उस ब्राह्मणीको अद्रिके पुत्र बलाक नामक राक्षसने हरण किया है और उत्पलावत नामक वनमें रख छोड़ा है। आप जायँ, आपको सफलता मिलेगी। उस धार्मिक ब्राह्मणके कृत्य बेकार हो रहे हैं। उसकी पत्नीको उससे मिला दीजिये।'

राजा जब उत्पलावत वनमें पहुँचे तो देखे कि ब्राह्मणी श्रीफल खा रही है। आकार-प्रकारके अनुसार ब्राह्मणीको पहचाननेमें उन्हें कठिनाई नहीं हुई। वैसी कुरूप महिलाको राजाने कभी नहीं देखा था। फिर भी सचाई जाननेके लिये राजाने पूछा—'भद्रे! तुम इस वनमें कैसे आयी हो? तुम विशालके पुत्र सुशर्मा नामक ब्राह्मणकी भार्या हो या नहीं?' ब्राह्मणीने कहा—'मेरे पिताका नाम अतिरात्र है और आपने जिस विशाल-पुत्रका नाम लिया है, मैं उन्हींकी पत्नी हूँ। रातमें सोते समय दुरात्मा राक्षस मुझे हर लाया है। मुझे अपनी माँ और भाईकी बहुत याद आ रही है। मैं दुःखसे यहाँ रह रही हूँ। राक्षसने लाकर मुझे यहीं छोड़ दिया है। न तो मुझे खाता है, न कभी मिलता है।' राजाने कहा—'भद्रे! तुम्हारे पतिने ही मुझे भेजा है। तुम बता सकती हो कि वह राक्षस कहाँ है?' ब्राह्मणीने कहा—'आप इस वनके प्रान्तभागमें जायँ, वहाँ वह राक्षस दिखायी देगा।' ब्राह्मणीके बताये मार्गसे जाकर राजाने राक्षसको देखा। वह अपने परिवारमें था। उसकी स्त्री अप्सराके समान सुन्दरी थी। राजाको देखते ही उस राक्षसने भूमिपर मस्तक टेककर प्रणाम किया और कहा—'आपका बड़ा अनुग्रह है, जो आप मेरे घर पधारे। मैं आपके राज्यमें रहता हूँ। मुझे आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' उसने राजाका आतिथ्य किया। राजाने पूछा—'ब्राह्मणकी भार्याको तुमने क्यों हरण किया है? भार्या बनानेके लिये हरण किया है, यह तो नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह अत्यन्त कुरूप है और तुम्हारी पत्नी अप्सराकी भाँति सुन्दरी है। यदि उसे खानेके लिये लाया है तो अबतक खाया क्यों नहीं?'

राक्षसने विनम्रतासे कहा—'राजन्! मैं मनुष्यभक्षी राक्षस नहीं हूँ। मैं जो पुण्यका फल होता है, उसे ही खाता हूँ। इसी तरह मनुष्यके स्वभावके खानेसे मेरा पेट भरता है। इसलिये खानेके लिये तो मैंने ब्राह्मणीका हरण नहीं किया है और जैसा आपने कहा है कि ऐसे कुरूपकी ओर तो देखनेकी भी इच्छा नहीं होती, ऐसीको भार्या कौन बनावे। भार्या बनानेकी बात तो दूर पड़ जाती है। मैंने जो ब्राह्मणीका हरण किया है, उसका एक मात्र उद्देश्य है क्षुधा-मार्जन। इसका पतिदेव धर्मनिष्ठ ब्राह्मण है। वह इस कर्कशाके कटु भाषण और कटु आचरणको सहन करता हुआ इसका भरण-पोषण-रक्षण करता है। इसी कर्तव्यनिष्ठाके प्रभावसे मैं उस ब्राह्मणके यज्ञमें विघ्न नहीं पहुँचा पाता। यदि विघ्न पहुँचा पाता तो मेरा पेट भरता। प्रत्येक यज्ञमें वह ब्राह्मण बुलाया जाता है और प्रत्येक यज्ञमें मैं भी पहुँचता हूँ, किंतु पत्नीके ऊपर उसकी कर्तव्यनिष्ठाके कारण मैं विघ्न नहीं डाल पाता और प्रत्येक यज्ञसे भूखा ही लौट आता हूँ। अतः घबराकर अपनी भूख मिटानेके लिये उसे धर्मसे अलग करना पड़ा है। उसकी पत्नीको चुरा लाया हूँ, इस कारण वह अपनी पत्नीकी रक्षा न करनेके कारण पतिके धर्मसे भ्रष्ट हो गया है। अब वह जिस-किसी यज्ञमें जाता है, वहाँ मैं पेटभर भोजन पा लेता हूँ।'

राक्षसकी बातोंको सुनकर राजाको बहुत विषाद हुआ। उन्हें आपबीती घटना याद आने लगी। उन्होंने अनजानमें अपनी धर्मभार्याका त्याग कर अपने सम्पूर्ण धर्मका ही सफाया कर डाला था। फिर भी अपनेको सँभालकर राजाने प्रस्तुत कार्यकी ओर ध्यान दिया। उन्होंने राक्षससे कहा—'निशाचर! तुमने मेरा कार्य करनेकी जो प्रतिज्ञा की है, उसे पूरा करो। मैं चाहता हूँ कि तुम इस ब्राह्मणीके स्वभावको खा जाओ और इसे अपने पतिके पास पहुँचा दो।'

—क्रमशः

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तःकरणप्रबोधः

अन्तःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु। कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ॥
चाण्डाली चेद् राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता। कदाचिदपमानेऽपि मूलतः का क्षतिर्भवेत् ॥
समर्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः। का ममाधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् ॥
सत्यसंकल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति। आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत् ॥
सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति। आज्ञा पूर्वं तु या जाता गङ्गासागरसङ्गमे ॥
यापि पश्चान्मधुवने न कृतं तद् द्वयं मया। देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः ॥
पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा। लौकिकप्रभुवत् कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन ॥
सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव। प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहान्न प्रेष्यते वरे ॥
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा। लोकवच्चेत् स्थितिर्मे स्यात् किं स्यादिति विचारय ॥
अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मा गाः कथञ्चन। इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः ॥
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत् ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितान्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः ॥

मेरे अन्तःकरण ! तुम सावधान होकर मेरी बात सुनो । वास्तवमें श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा कोई दोषरहित देवता नहीं है । यदि कोई चाण्डाल-कन्या राजाकी पत्नी हो गयी और राजाने उसे सम्मान दे दिया तो उसका महत्त्व तो बढ़ ही गया । फिर कदाचित् राजाद्वारा उसका अपमान भी हो तो भी मूलतः उसकी क्या हानि हुई ? (वह पहले ही कौन बड़ी सम्मानित थी ? इस समय तो चाण्डालीसे रानी बन गयी ! अब रानीसे चाण्डाली नहीं हो सकती ।) भगवान्‌को आत्मसमर्पण करनेसे पूर्व मैं क्या सदा उत्तम ही रहा ? और अब मुझमें किस अधमताकी सम्भावना हो गयी, जिसके लिये पश्चात्ताप हो । भगवान् श्रीकृष्ण सत्यसंकल्प हैं, वे अपनी सच्ची प्रतिज्ञाके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे । अतः हमलोगोंको सदा उनकी आज्ञाका ही पालन करना चाहिये, अन्यथा स्वामीसे द्रोह करनेका अपराध होगा । सेवकका तो यही धर्म है कि वह स्वामीकी आज्ञाका पालन करे । स्वामी अपने कर्तव्यका पालन स्वयं करेंगे । पूर्वकालमें गङ्गासागरसङ्गमपर और फिर वृन्दावनमें मेरे लिये जो आज्ञाएँ प्राप्त हुईं, उन दोनोंका पालन मुझसे न हो सका । देह और देशके परित्यागके सम्बन्धमें जो तीसरा आदेश है, वह सब लोकोंके समक्ष है । मैं तो सेवक हूँ, अतः स्वामीकी आज्ञाके विपरीत कुछ नहीं कर सकता, फिर मुझे पश्चात्ताप कैसा ? श्रीकृष्णको लौकिक प्रभुओंकी भाँति कदापि नहीं देखना चाहिये । यदि भक्तिभावसे तुमने सब कुछ भगवान्‌को सौंप दिया, तो कृतार्थ हो गये । अब सुखी रहो । जैसे कोई-कोई माता-पिता स्नेहाधिक्यके कारण सयानी कन्याको भी उसके पतिके पास नहीं भेजते (और वरको असंतुष्ट होनेका अवसर देते हैं) वही बर्ताव इस शरीरके विषयमें भी नहीं करना चाहिये । अर्थात् ममता या आसक्तिवश इस शरीरको अपने स्वामी श्रीकृष्णकी सेवामें लगानेसे न चूके, अन्यथा वर असंतुष्ट हो जायगा । मेरे मन ! यदि साधारण लोगोंकी ही भाँति मेरी भी स्थिति रही तो क्या होगा, यह तुम स्वयं विचार लो । अशक्तावस्थामें श्रीहरि ही एकमात्र सहायक हैं । अतः तुम्हें किसी प्रकार मोहमें नहीं पड़ना चाहिये । यह चित्तके प्रति श्रीकृष्णदासवल्लभका वचन है, जिसे सुनकर भक्त पुरुष चिन्तारहित हो जाता है ।

[अनुवादक—पाण्डेय पं॰ श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री]

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पंजीकृत-संख्या-जी० आर०—१३

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गके आयोजनकी व्यवस्था है। वहाँ *परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज* वैशाख-सुदीमें किसी भी तिथिको पहुँच सकते हैं। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गी भाई लोग तथा माताएँ-बहनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे गीताभवन पधारें, आमोद-प्रमोद (मनोरञ्जन) अथवा जलवायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सभीको केवल सत्सङ्ग-लाभके उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिये एवं यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्सङ्ग, कथा-श्रवण तथा कीर्तन आदिके आयोजनोंमें अनिवार्यरूपसे सम्मिलित होना चाहिये। दिनाङ्क २१-५-८८ से गङ्गाजीके तटपर श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्नपारायण होनेका भी निश्चय किया गया है।

जिन्हें नौकर, रसोइयाकी आवश्यकता हो, उन्हें यथासम्भव उनको अपने साथमें ही ले जाना चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर, रसोइयोंका मिलना कठिन है। माताएँ और बहनें पीहर या ससुरालवालोंके (अथवा अन्य किसी निकटके सम्बन्धीके) साथ ही वहाँ जायँ। अकेली कदापि न जायँ। अकेली जानेकी दशामें उन्हें स्थान मिलनेमें कठिनाई हो सकती है। गहने आदि जोखिमकी वस्तुएँ साथमें बिलकुल नहीं ले जानी चाहिये। सत्सङ्गी भाइयोंको बहुत आवश्यक सामान ही अपने साथमें ले जाना चाहिये तथा अपने सामानकी पूरी सँभाल भी स्वयं ही रखनी चाहिये। जहाँतक बन पड़े, छोटे बच्चोंको साथमें न ले जायँ। खान-पानकी वस्तुओंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, परंतु दूधके प्रबन्धमें बहुत कठिनाई है।
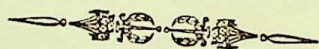
—व्यवस्थापक

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१- प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,
२- प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,
३- मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये) जगदीशप्रसाद जालान,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
४- सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
५- उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय, पता-नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता, (सन् १८६०के विधान २१के अनुसार) रजिस्टर्ड-धार्मिक संस्था।

मैं जगदीशप्रसाद जालान गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

दिनाङ्क—१।२।१९८८

जगदीशप्रसाद जालान
(गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये)
प्रकाशक

CC-O. Nanaji Deshmukh Library, BJP, Jammu. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha